

A black and white portrait of Max Müller, an elderly man with white hair, wearing a dark suit and a white shirt with a high collar. The portrait is centered in the background of the page.

# मैक्समूलर द्वारा वेदों का विकृतीकरण

डॉ के वी पालीवाल

मैक्समूलर ने अपनी बहुअर्थी लेखनी की आड़ में आजीवन वेदों को विरूपित किया, फिर भी वह अपने को हिन्दू धर्म का हितैषी होने का ढोंग रचता रहा। इस बात के इतने पक्के, सच्चे और आश्चर्यजनक प्रमाण हैं कि कोई भी तर्क उसे वेदों के विकृतीकरण के दोष से बचा नहीं सकता।

# मैक्समुलर द्वारा वेदों का विकृतीकरण

डॉ. के वी पालीवाल

हिन्दू राइटर्स फोरम

१२९ बी, एम. आई. जी.

राजौरी गार्डन

नई दिल्ली- ११००२७

**नोट:** यह पुस्तक भारत के खिलाफ समस्त अंतर्राष्ट्रीय दुष्प्रचारों, छलों एवं भयानक मिथ्याओं के गहन अन्धकार को भेदकर सत्य तक पहुंचती है! आप से विनम्र निवेदन है कि सत्य के प्रकाश को जन-जन तक पहुंचाए!

## विषय सूचि

१. यह पुस्तक क्यों.....	५
➤ मैक्समूलर की दूसरी जीवनी में असली स्वरूप.....	६
२. एक मैक्समूलर की खोज क्यों?.....	९
➤ भारत में इसाइयों की गतिविधिया ..... ९	
➤ पादरी एडम द्वारा हिन्दू धर्म स्वीकारने की प्रतिक्रिया ..... १०	
३. यूरोप में संस्कृत साहित्य में रुचि क्यों.....	१३
➤ संस्कृत अध्ययन के विभिन्न उद्देश्य ..... १४	
➤ इंग्लैंड में संस्कृत शिक्षा के लिए 'बोडेन चेयर' की स्थापना ..... १५	
➤ बोडेन चेयर का उद्देश्य ..... १५	
➤ बोडेन चेयर का दूसरा अधिष्ठाता ..... १७	
४. मैक्समूलर द्वारा ही वेद भाष्य क्यों?.....	१९
➤ मैक्समूलर कौन था? ..... १९	
➤ मैक्समूलर द्वारा रचित साहित्य ..... २०	
➤ कम्पनी द्वारा चयन पर असीम प्रसन्नता ..... २३	
५. क्या मैक्समूलर वेद भाष्य करने योग्य था?.....	२७
➤ मैक्समूलर का वैदिक संस्कृत ज्ञान ..... २७	
➤ मैक्समूलर ने स्वयं अपना संस्कृत ज्ञान अपर्याप्त माना ..... ३०	
➤ पाश्चात्य वेद भाष्यकारों का संस्कृत ज्ञान..... ३४	
६. मैक्समूलर के वेद भाष्य पर मैकॉले का प्रभाव.....	३८
➤ भारत के विषय में ब्रिटिशों की नीतियाँ ..... ३८	
७. मैक्समूलर द्वारा वेदों का विकृतीकरण क्यों?.....	४९
➤ बोडेन चेयर पाने का प्रयास..... ४९	
➤ मैक्समूलर के वेद भाष्य का उद्देश्य..... ५४	
८. मैक्समूलर द्वारा वेदों का विकृतीकरण कैसे?.....	५६
➤ वेद भाष्य के आधार..... ५६	
➤ सायणाचार्य की भी उपेक्षा..... ५७	
➤ मैक्समूलर के वेद भाष्य की शैली ..... ५८	
➤ सायण - मैक्समूलर शैली की आलोचना ..... ५९	
९. मैक्समूलर ने वेदों में क्या विकृत किया ?.....	६८
➤ हिन्दू संस्कृति में वेदों का महत्त्व..... ६८	
➤ वेदों में मानव इतिहास नहीं है, परन्तु सभी नाम वेदों से लिए गए हैं..... ६९	
➤ मैक्समूलर की दृष्टि में वेद का स्थान..... ७१	

➤ वेदों का रचना काल.....	७२
➤ वेदों के रचनाकार .....	७४
➤ मंत्र दृष्टा ऋषि .....	७६
➤ वेदों की मौलिकता .....	७७
➤ वैदिक देवतावाद .....	७८
➤ देव/ देवता का अर्थ .....	७८
➤ ईश्वर एक, नाम अनेक .....	८०
➤ हीनोथीज़म (Henothesim).....	८२
➤ वेदों में मानव इतिहास एवं विकासवाद.....	८८
<b>१०. मैक्समूलर एक ईसाई धर्म प्रचारक ! .....</b>	<b>९५</b>
➤ पहला पत्र .....	९९
➤ दूसरा पत्र.....	९९
➤ तीसरा पत्र .....	१०२
➤ चौथा पत्र.....	१०३
➤ पाँचवाँ पत्र .....	१०३
➤ छठा पत्र .....	१०४
➤ सातवाँ पत्र.....	१०६
➤ सेक्रेड बुक्स ऑफ दी ईस्ट-सीरीज़ (पूर्व की पवित्र पुस्तकों की ग्रंथमाला).....	१०७
<b>११. मैक्समूलर का असली चेहरा .....</b>	<b>११०</b>
➤ आत्म निरीक्षण का अवसर.....	११४
➤ मैक्समूलर बेनकाब .....	११४
<b>१२. संदर्भ ग्रंथ.....</b>	<b>११६</b>

## १. यह पुस्तक क्यों

भारत के लोगों को फ्रेडरिक मैक्समूलर का परिचय कराने की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि ब्रिटिश शासनकाल में ब्रिटिश राजनीतिज्ञों, प्रशासकों और कूटनीतिज्ञों ने उसे एक सदी (१८४६-१९४७) तक लगातार हिन्दुओं का एक अभिन्न मित्र और वेदों के महान विद्वान के रूप में प्रस्तुत किया है, परन्तु सत्य इसके विपरीत है। वास्तव में वह हिन्दुओं और हिन्दू धर्मशास्त्रों का एक महान शत्रु था। लेकिन दुर्भाग्य से, उस समय के ही नहीं, बल्कि आज के हिन्दू भी उसके उद्देश्य व कार्य के दूरगामी प्रभाव को समझने में असफल रहे हैं। क्योंकि मैक्समूलर ने अपनी लेखनी की चतुराई द्वारा अपने वास्तविक स्वरूप और वेद भाष्य के विकृतीकरण के उद्देश्य को बड़े योजनाबद्ध तरीके से छिपाए रखा, यहाँ तक कि उसके निधन के बाद सन १९०१ में प्रकाशित स्वलिखित जीवनी में भी उसे उजागर नहीं किया।

इस सन्दर्भ में **श्री ब्रह्मदत्त भारती** ने अपनी पुस्तक '**मैक्समूलर-ए लाइफ लीग मास्करेड**' में इस प्रकार लिखा है:

"Max Muller's effectiveness as the arch enemy of Hinduism lay dangerously hidden in his subtle equivocations and in his ability, which seemed congenital, successfully to pass a counterfeit coin without being caught while performing the feat. His capacity to look honest and sound sincere on surface was prodigious, the Hindus, of the nineteenth century failed to discover and understand Max Muller and his Max Muller's, because, by and large, being, too gullible, they believed whatever max Muller wrote and said. "Since he had been, in addition, covertly supported and encouraged by the Englishmen who then ruled Hindustan, he was able

to mount his veiled attacks on Hinduism again and again from behind the convenient cover of philological research." (p. 194)

**अर्थात्** "मैक्समूलर की हिन्दू धर्म के प्रति कट्टर शत्रुता का प्रभावीपन उसकी लेखनी की बहुअर्थी शैली में भयंकर रूप से छिपा हुआ है। इस सफलता का रहस्य उसकी इस योग्यता से भी आसानी से समझा जा सकता है, जैसे कोई चालाक व्यक्ति खोटे सिक्के को चला देने पर भी पकड़ा नहीं जाता है। उसका ऊपर से हिन्दूधर्म शास्त्रों वेदों आदि के प्रति सच्चा और निष्ठावान दिखलाई देना उसकी आश्चर्यजनक रहस्यमयी लेखन शैली की क्षमता का परिचायक है। उन्नीसवीं सदी के हिन्दू मैक्समूलर और उसके मैक्समूलर वेद को पहचानने और समझने में पूरी तरह असफल रहे हैं। क्योंकि हिन्दुओं के आमतौर पर अत्यंत सीधे-सादे होने के कारण उन्होंने उसे ही सच मान लिया जो कि मैक्समूलर ने कहा और लिखा। इसके अतिरिक्त उसे आजीवन अप्रत्यक्ष रूप से अंग्रेजों का पूर्ण समर्थन और सहयोग मिलता रहा, जो कि उस समय भारत के शासक थे। इसी कारण वह **भाषा विज्ञान-शोध** की आड़ में छिपकर लगातार हिन्दूधर्म एवं वेदों पर प्रहार करता रहा।" (पृ. १९४)

इसी के साथ-साथ अंग्रेज शासक लगातार यही प्रचार करते रहे कि मैक्समूलर तो वेदों का महान विद्वान और हिन्दू धर्म तथा हिन्दुओं का शुभचिंतक है। वे इस कथन की पुष्टि इस बात से करते हैं कि उसने **ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी** में १८४६ से १९०० तक वेदों और हिन्दू धर्म शास्त्रों पर एक विशाल साहित्य स्वयं लिखा तथा अपने जैसे सहयोगी लेखकों द्वारा लिखाकर उसे स्वयं संपादित किया।

मैक्समूलर ने अपनी बहुअर्थी लेखनी की आड़ में आजीवन वेदों को विरूपित किया, फिर भी वह अपने को हिन्दू धर्म का हितैषी होने का ढोंग रचता रहा। इस बात के इतने पक्के, सच्चे और आश्चर्यजनक प्रमाण हैं कि कोई भी तर्क उसे वेदों के विकृतीकरण के दोष से बचा नहीं सकता।

## मैक्समूलर की दूसरी जीवनी में असली स्वरूप

इसके लिए हमें बाहर के किसी दूसरे प्रमाणों की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि मैक्समूलर द्वारा लिखित साहित्य और अपने मित्रों, परिवारीजनों आदि को लिखे उसके पत्रों में ही पर्याप्त सामग्री मिलती है। हालांकि मैक्समूलर की स्वलिखित जीवनी १९०१ में ही प्रकाशित हुई थी, परन्तु उसकी पत्नी **जोर्जिना मैक्समूलर** ने उसके फौरन बाद १९०२, में उसकी एक और जीवनी "**दी लाइफ एण्ड लैटर्स ऑफ दी आनरेबिल फ्रेडरिक मैक्समूलर**" के नाम से

प्रकाशित की। इसमें अन्य विवरणों के सहित मैक्समूलर द्वारा लिखे पत्रों का संकलन भी है। उसके प्रकाशन का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए श्रीमती जोर्जिना ने पुस्तक की भूमिका में लिखा:

"It may be thought that the publication of these volumes is superfluous after two works '**Auld Lang Syne**' and the '**Autobiography**' (2 Vols.) written by Max Muller himself. But it seemed that something more wanted to show the innermost character of the real man. ...The plan pursued throughout these volumes has been to let Max Muller letters and the testimony of friends to his mind and character speak for themselves, whilst the whole is connected by a slight thread of necessary narrative. The selection from the letters has been made with a view to bring the man rather the scholar before the world."

(preface to November, 1902, New York Edition; Bharti, p. IX).

**अर्थात्** "ऐसा सोचा जा सकता है कि स्वयं मैक्समूलर द्वारा लिखित "**औल्ड लैंग सायने**" और "**आत्मजीवनी**" (२ खंडों में) प्रकाशित हो जाने के बाद, इन खंडों के प्रकाशन की कोई आवश्यकता नहीं है। लेकिन मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि उस मनुष्य के आन्तरिक चरित्र की वास्तविकता को देखने के लिए कुछ और अधिक करने की आवश्यकता है। इन खंडों में जो योजना लगातार अपनाई गई है, वह मैक्समूलर के पत्रों और उसके मित्रों के प्रमाण स्वरूप दिए गए कथन, उस मनुष्य की सोच और चरित्र को स्वयं उजागर करते हैं, जबकि समस्त सामग्री आवश्यक आत्मकथा के धागे से बंधी हुई है। यहाँ उद्धृत पत्रों का चुनाव इस उद्देश्य से किया गया है ताकि विश्व के सामने एक विद्वान की अपेक्षा उस मनुष्य का सही स्वरूप प्रस्तुत किया जा सके।"

(न्यूयार्क संस्करण, १९०२, प्राक्कथन पृ.- ९)

इसलिए यहाँ हमारा उद्देश्य यह समझने का है कि क्या वह वास्तव में वेदों और हिन्दू धर्म शास्त्रों का प्रशंसक और भारत का पुत्र था? और उन्हें वह अंग्रेजी माध्यम से विश्व भर में फैलाना चाहता था? क्या वह भारतीय धर्मशास्त्रों का जिज्ञासु था? क्या उसने ऋग्वेद का भाष्य भारतीय प्राचनीय **यास्कीय-पाणिनीय** पद्धति के अनुसार किया था? उसने **सायण-भाष्य** को ही आधार क्यों माना? क्या उसने सायण के सभी मापदण्डों को अपनाया? यदि नहीं, तो क्यों? आखिर उसे वेदों में क्या मिला?

क्या वह तुलनात्मक भाषा विज्ञान और गाथावाद के शोध की आड़ में एक पक्षापाती, पूर्वाग्रही और छद्मवेशी सैक्यूलर ईसाई मिशनरी था? जो वेदों और हिन्दू धर्म शास्त्रों के भ्रामक अर्थ करके हिन्दू धर्म को समूल नष्ट करना चाहता था। क्या वह वेदों को बाईबिल से

निचले स्तर को दिखाकर भारतीयों को ईसाईयत में धर्मान्तरित करना और भारत में ब्रिटिश राज को सिद्ध करना चाहता था? आखिर उसने वेदों और भारत के प्राचीन इतिहास के बारे में अनेक कपोल कल्पित मान्यताएं क्यों स्थापित की? इसके अलावा **ईस्ट इंडिया कंपनी** ने भी अंग्रेजी और संस्कृत दोनों ही भाषाओं के ज्ञान में अधकचरे, चौबीस वर्षीय, अनुभवहीन गैर-ब्रिटिश, जर्मन युवक मैक्समूलर को ही वेदभाष्य के लिए क्यों चुना?

उसने वेदों का विकृतीकरण क्या, क्यों और कैसे किया? इन्हीं कुछ प्रश्नों को यहाँ संक्षेप में विश्लेषण किया जाएगा। ताकि अधकचरे ज्ञानी हिन्दू और सैक्यूलरवादी, जो उसके विकृत साहित्य के आधार पर समय-समय पर हिन्दू धर्म की निंदा करते रहते हैं, उसकी वास्तविकता तथा उसके निहित उद्देश्य को समझ सकें। इसके लिए हमें तत्कालीन ब्रिटिश शासित भारत की धार्मिक व राजनीतिक स्थितियों को समझना होगा, जिनके कारण उन्हें एक मैक्समूलर की तलाश करनी पड़ी।



elibrary.thearysamaj.org



## ०२. एक मैक्समूलर की खोज क्यों?

उन्नीसवीं सदी में ईस्ट इंडिया कम्पनी के सामने ऐसी कौन सी विवशताएं थीं जो उन्हें अंग्रेजी और संस्कृत दोनों ही भाषाओं के ज्ञान में अधकचरे, अनुभवहीन, चौबीस वर्षीय, विदेशी जर्मन निवासी मैक्समूलर को वेद भाष्य के लिए चुनना पड़ा? क्या वे १७५७ में स्थापित ब्रिटिश शासन को हिन्दू धर्मशास्त्रों का गहन अध्ययन कर यहाँ हिन्दू धर्म शास्त्रानुसार शासन चलाना चाहते थे? या इसके विपरीत क्या वे हिन्दू धर्म शास्त्रों को विकृत और हिन्दू संस्कृति को हेय सिद्ध करके हिन्दुओं को ईसाईयत में धर्मान्तरित करना चाहते थे? ताकि भारत सदैव के लिए एक ईसाई राज्य हो सके।

### भारत में ईसाईयों की गतिविधियाँ

ईसाईयत एक धर्म आधारित साम्राज्यवादी आन्दोलन है, और प्रारम्भ से ही भारत ईसाई मिशनरियों के निशाने पर रहा है। ईसाईयत छल, कपट, धोखा, जालसाजी और प्रलोभन आदि के द्वारा गैर-ईसाईयों के धर्मान्तरण के लिए विख्यात रही है। भारत में ऐसा आज भी सैक्यूलरिज्म की आड़ में और तेज गति से हो रहा है; और लगभग १००० हिन्दू प्रतिदिन धर्मान्तरित हो रहे हैं। भारत में ब्रिटिश शासन की स्थापना के पहले भी पुर्तगाल से सत्रहवीं सदी में, **सेन्ट जोवियर**, और इटली से **रोबर्ट डी नोबली** (१५७७-१६५६) यहाँ आए थे, जिन्होंने छल-कपट से अनेक हिन्दुओं का धर्मान्तरण किया।

ईसाई मिशनरियों ने '**गोवा इन्क्यूबीजीशन**' के दौरान (१५८०-१८१२), हजारों हिन्दुओं को जिन्दा जलाया, कत्ल किया और उन्हें अनेक प्रकार से प्रताड़ित किया (प्रियोलकर)। नोबली ने अपने को इटली का **रोमन ब्राह्मण** बताया और १५७८ में, '**एजुरवेदम्**' के नाम से

एक नकली वेद की रचना की। लेकिन रोबर्ट नोबली के छल-कपट की कलई १८४० में पूरी तरह खुल गई। तब तक, उसके धोखे से, अनेक हिन्दू ईसाई बन चुके थे।

इसी प्रकार एक दूसरा **जैसुआइट मिशनरी, अब्बे डुबोइस** भी अठाहरवीं सदी में भारत आया। लेकिन कर्नाटक के हिन्दुओं ने उसकी एक न सुनी, क्योंकि डुबोइस एक धोखेबाज था। (नटराजन, पृ ग्गटप्प)। इसके बाद, १७९३ में, इंग्लैंड से **बेपटिस्ट चर्च** का एक दल **रेव. विलियम कैरी** के नेतृत्व में भारत आया। जिसने कलकत्ता के पास, १७९९ में सीरमपुर मिशन स्थापित किया। कैरी और उसके साथी **मार्शमैन** ने भी हिन्दुओं के धर्मान्तरण के लिए धोखाधड़ी का सहारा लिया। लेकिन तत्कालीन बंगाल के सुप्रसिद्ध समाज सुधारक एवं प्रकाण्ड विद्वान **राजा राममोहन रॉय** (१७७२-१८३३) की विद्वता, तर्क शैली और अकाट्य प्रमाणों के सामने ईसाईयों की एक दाल न गली। १८१५ से १८३३ तक कलकत्ता में, जहाँ कि उस समय **ईस्ट इंडिया कम्पनी** का मुख्य कार्यालय था, श्री रॉय का यहाँ के बौद्धिक वर्ग में अच्छा खासा प्रभाव था।

## पादरी एडम द्वारा हिन्दू धर्म स्वीकारने की प्रतिक्रिया

१८२१ में, कलकत्ता में एक ऐसी अविश्वसनीय और सनसनीखेज घटना घटी, जिसकी प्रतिक्रिया के कारण ब्रिटिश साम्राज्य और ईसाईयत की भारत में हिन्दू धर्म सम्बन्धी कार्यक्रमों, योजनाओं और युद्ध नीतियों पर व्यापक प्रभाव पड़ा।

हुआ यह कि १९ मार्च १८१८ को मिशन सोसाइटी, लंदन का रेव. विलियम एडम नामक एक ईसाई मिशनरी सीरमपुर केन्द्र से सम्मिलित हुआ और उसे राजा राम मोहन रॉय को ईसाईयत में धर्मान्तरित करने का उत्तरदायित्व सौंपा गया। इस कार्यभार को पूरा करने के लिए पादरी एडम श्री रॉय के अधिक सम्पर्क में आने लगा और अनेकों बार वे आपस में धार्मिक वाद-विवाद में भी उलझने लगे। एक बाद पादरी एडम ने बाइबिल के '**ट्रिनिटी सिद्धान्त**' यानी 'तीन दैवीशक्तियाँ- पिता, पुत्र और पवित्र आत्मा', तीनों एक ही हैं और एक में ही तीनों हैं, इस विषय पर चर्चा की। जबकि श्री रॉय ने वेदों और उपनिषदों के आधार पर प्रमाण देते हुए हिन्दुओं के एकेश्वरवाद के पक्ष में तर्क दिए तथा वेदों की श्रेष्ठता और उनकी तर्कसंगति को स्थापित किया। रॉय के विचार से सहमति जताते हुए एडम ने ७ मई १८२१ को अपने मित्र **एन. ब्राइट** को अपने पत्र में इस प्रकार लिखा:-

"It is several months since I began to entertain some doubts respecting the deity of Jesus Christ, suggested by frequent discussions with Ram Mohan Roy, whom I was trying to bring over to the belief of that

doctrine, and in which I was joined by Mr. Yates, who also professed to experience difficulties on the subject. I do not hesitate to confess that I am unable to remove the weighty objections which present themselves against the doctrine, the objections against it, compared with the arguments for it, appear to me like a mountain compared with a mole hill."

**(Life and Letters of Ram Mohan Roy, p.68; Bharti, p.3).**

**अर्थात्** "मैंने राजा मोहन रॉय से कई महीनों तक उनके जीजस संबंधी संदेहों को दूर करने के उद्देश्य से अनेक बार बातचीत की, जिसमें मैं जीजस क्राइस्ट के सिद्धान्त को मनवाने के लिए प्रयत्नशील था। इस कार्य में मेरा साथ श्री येट्स भी दे रहे थे। परन्तु इन्हें भी जीजस के सिद्धान्तों की पुष्टि करने में कठिनाई अनुभव हुई है। मैं यह स्वीकारने में नहीं हिचक रहा हूँ कि मैं रॉय के जीजस के सिद्धान्तों को स्वीकारने के विरोध में दी गई तर्कों व आपत्तियों को दूर करने में असफल रहा हूँ, जो कि मुझे ईसाई सिद्धान्तों को न मानने की आपत्तियों और उनके समर्थन में दिए गए तर्क पहाड़ के सामने तिल समान प्रतीत हो रहे हैं।"

**(लाइफ एण्ड लैटर्स ऑफ राममोहन रॉय, पृ. ६८; भारती, पृ. ३)**

वह श्री रॉय से इतना प्रभावित हुआ कि उसने ईसाई मत त्याग कर हिन्दू धर्म स्वीकार कर लिया। इस प्रकार एक ईसाई पादरी के तीन साल के भीतर बाईबिलीय 'ट्रिनिटी' को त्यागने और वैदिक एकेश्वरवाद में आस्था लाने की घटना ने लंदन ईसाई मिशनो में यकायक एक अप्रत्याशित भूचाल ला दिया। अमरीका के मिशन क्षेत्रों में भी अभूतपूर्व प्रतिक्रिया हुई और हड़कम्प आ गया। **रेवरेण्ड एडम** के ईसाईयत को त्यागने और हिन्दू धर्म को स्वीकारने से ईसाई मिशनो और मिशनरियों को जबरदस्त धक्का पहुँचा, जिससे उनकी भारत में नींव हिल गई। इसीलिए आज भी चर्च 'ट्रिनिटी' पर अधिक बल नहीं देता है।।

इसकी प्रतिक्रिया में **मिशन सोसायटी लंदन** ने अपनी, २० जून १८२२ की वार्षिक रिपोर्ट में रेव. विलियम एडम के बारे में यह घोषणा की:

"We mention with deep regret that Mr. Adam, late one of their member had embraced opinions derogatory to the honour of the Saviour, denying the proper divinity of 'Our god Jesus Christ' in consequence of which the connection between him and the society has been dissolved."

**(Bharti, p. 4)**

“हम अत्यन्त दुःख के साथ सूचित करते हैं कि अपने एक पूर्व सदस्य मि. एडम ने उद्धारक जीजस के विरुद्ध अपमानजनक विचार व्यक्त किए हैं और हमारे 'देव जीजस क्राइस्ट'

के समुचित देवत्व को नकारा है। इसके परिणामस्वरूप उसके और लंदन सोसायटी के बीच सभी प्रकार के संबंध समाप्त कर दिए गए हैं।"

(भारती, प्र.4)

रेव. विलियम एडम, जिसे चर्च ने अविश्वासी घोषित कर, निष्कासित कर दिया, वही सोसिनियम पादरी अब राम मोहन रॉय के साथ वैदिक धर्म के एकेश्वरवाद का प्रचारक हो गया।

उपरोक्त घटनाक्रम के आघात के परिणामस्वरूप ब्रिटिश कुटनीतिक और मिशनरियों को अपनी मूल योजनाओं और युद्ध नीतियों को बदलने के लिए विवश होना पड़ा। अब मिशनरी जगत ने ईसाइयत के मुख्य सिद्धान्तों और समस्याओं पर विचार करना प्रारंभ किया। और वे सब इस नतीजे पर पहुँचे कि रॉय को 'ट्रिनिटी' संबंधी आपत्तियों का केवल इसी आधार पर उत्तर दिया जा सकता है कि वे कोई ऐसा व्यक्ति ढूँढ सकें, जो संसार के सामने यह सिद्ध कर दे कि वेदों में भी बहुदेवतावाद है और वे भी अनेक देवताओं की उपासना की शिक्षा देते हैं। अतः इन घटनाओं ने ब्रिटिश शासकों को एक ऐसे व्यक्ति को खोजने के लिए विवश कर दिया जो हिन्दू धर्मशास्त्रों की ऐसी भ्रामक व विरूपित व्याख्या कर सके। जिसके परिणामस्वरूप मिशनरी हिन्दू धर्म की निंदा कर सकें और वे हिन्दुओं को ईसाइयत में आसानी से धर्मान्तरण करने, तथा ईसाइयों की हिन्दू धर्म में वापसी को रोकने में समर्थ हो सकें।



### ०३. यूरोप में संस्कृत साहित्य में रुचि क्यों?

यूरोप में सोलहवीं सदी तक संस्कृत साहित्य के प्रति कोई रुचि न थी। सत्रहवीं सदी के मध्य में **हेनरिथ रॉथ** (१६२०-१६६८) नामक जर्मन जैसुआइट पादरी आगरा आया और मिशनरी कार्य के लिए सबसे पहले उसे संस्कृत सीखी एवं १६६२ में संस्कृत व्याकरण पर पुस्तक लिखी। यहाँ संस्कृत साहित्य के प्रति तीव्र जिज्ञासा और वैचारिक उत्कंठा अठारहवीं सदी के अंत और उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भ में भारत में धार्मिक और राजनैतिक कारणों से उत्पन्न हुई। १७५७ में **पलासी के युद्ध** के बाद भारत में अंग्रेजों का राज्य स्थापित हो गया। तब **गवर्नर वारेन हेस्टिंग्स** ने प्रशासनिक और कानूनी दृष्टि से भारतीयों के रीति रिवाज और धार्मिक आस्था जानने के लिए ब्रिटिश अधिकारियों को संस्कृत सीखने की प्रेरणा दी। परिणामस्वरूप यहाँ कॉलेज खोले गए और १७८४ में कलकत्ते में '**एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल**' की स्थापना की गई। **चार्ल्स बिल्किन्स** पहला अंग्रेज अधिकारी था, जिसने बनारस में संस्कृत भाषा सीखी और १७८५ में **श्री मद्भागवद् गीता**, १७८७ में **हितोपदेश** और १७९६ में **महाभारत** के शाकुन्तलीपख्यान का अंग्रेजी में अनुवाद प्रकाशित किया।

जब १७६३ में **विलियम जोन्स** को ब्रिटिश सेटिलमेंट का मुख्य न्यायाधीश नियुक्त किया गया, तो उसने संस्कृत सीखी और १७८९ में **महाकवि कालीदास** के **अभिज्ञानशाकुन्तलम्** और १७९४ में **मनुस्मृति** का अंग्रेजी में अनुवाद किया। इसी समय (१८०२) दाराशिकोह के फारसी में, उपनिषदों का फ्रेंच लेखक **एन्क्वेरिल डू पेरोन** (१७२१-१८०६) द्वारा किया गया लेटिन अनुवाद प्रकाशित हुआ। इन साहित्यिक और दार्शनिक ग्रंथों ने यूरोप, और विशेषकर जर्मनी में, संस्कृत भाषा और साहित्य के प्रति अभूतपूर्व जागृति एवं जिज्ञासा पैदा कर दी।

**आगस्त विलहेम श्लेगल** (बोन यूनीवर्सिटी) जर्मनी, में पहला संस्कृत प्रोफेसर नियुक्त हुआ और उसका छोटा भाई **फ्रेडरिक श्लेगल** दोनों ही भारतीय दर्शन व साहित्य के अनन्य प्रशंसक थे। एक दूसरे जर्मन संस्कृत विद्वान **विलहेम हम्बोल्ट** और **ऑगस्ट श्लेगल** ने

मिलकर भगवद्गीता का जर्मन में भाष्य प्रकाशित किया। तीसरे प्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक **अर्थर शोपेन हावर** ने उपनिषदों को '**मानव बुद्धिमत्ता की सर्वोत्तम कृति एवं 'अतिमानवीय चिन्तन'** कहा। उसने आगे लिखा-

"It is the most satisfying and elevating reading of Upanishads which is possible in the world: it has been the solace of my life and will be the solace of my death."

**अर्थात्-** जीवन में इनका (उपनिषदों का) पढ़ना अत्यंत संतोषजनक और प्रेरणादायक है। ये मेरे जीवन में सान्त्वनादायी हैं और मृत्यु में भी सान्त्वनाकारी रहेंगे।

## संस्कृत अध्ययन के विभिन्न उद्देश्य

इतने प्रेरणादायक उद्गारों को पढ़कर १९वीं सदी के जर्मनी, फ्रांस, ब्रिटेन आदि देशों के अनेक विद्वानों ने भारत के प्राचीन संस्कृत साहित्य के अध्ययन एवं शोध में अपना सारा जीवन लगा दिया। परंतु इन विद्वानों के अध्ययन और लेखन के उद्देश्य विभिन्न थे। इन्हें मुख्यतया तीन वर्गों में बांटा जा सकता है:

१. भारतीय धर्मशास्त्र, दर्शन और साहित्य के निष्पक्ष जिज्ञासु,
२. अधिकांशतः ईसाई मिशनरी वर्ग और
३. धर्म एवं राजनीति से प्रेरित ब्रिटिश वर्ग और भारत में उनके प्रशासक और मिशनरी वर्ग।

पहले वर्ग के लोगों ने भारतीय साहित्य को भाषा विज्ञान द्वारा निष्पक्ष एवं वैज्ञानिक दृष्टि से देखा और दार्शनिक विचारों को प्रेरणादायक माना। इस वर्ग में मुख्यतया **ऑगस्त श्लेगल** (१७६७-१८४५), **फ्रेडरिक श्लेगल** (१७७२-१८२९), **फ्रान्ज बाप** (१७९१-१८६७), **रुडोल्फ रॉथ** (१८२१-१८९५), **हरमैन ब्रोरवोस** (१८०६-१९०७), **थ्योडर बेनफे** (१८०९-१८८१) आदि मुख्य थे।

दूसरे वर्ग के विद्वानों ने मिशनरी भावना से प्रेरित होकर वैदिक देवतावाद का तुलनात्मक गाथावाद, विकासवाद और मानव इतिहास की दृष्टि से पक्षपात पूर्ण अनुवाद कर विशाल साहित्य लिखा। इनमें **ओल्डन वर्ग** (१८५४-१९२०), **अलब्रेट वेबर** (१८२५-१९०१), **फ्रेडरिक रोजन** (१८०५-१८३७), **अल्फ्रेड लुडविग** (१८३२-१९१२), **जार्ज बुहलर** (१८३७-१८९८), **ज्युलियस जौली** (१८४९-१९३२), **ओटोवॉन बोथलिंगम** (१८१५-१९०४), **मौरिस विंटरनिट्स** (१८६३-१९३७), **अर्नेस्ट कुहन** (१८४६-१९२०) आदि थे।

तीसरे वर्ग में ब्रिटेन में **एच.एच. विल्सन** (१७८६-१८६०), **फ्रेडरिक मैक्समूलर** (१८२३-१९००), **मौनियर विलियम्स**, **अर्थन ऐथोनी मैक्डोनल** (१८५४-१९३०), **ए.बी. कीथ** (१८७९-१९४४) आदि थे। भारत में प्रशासन से जुड़े विद्वानों में **चार्ल्स विलसन**, **विलियम जोन्स** (१७४६-१७९४), **कॉलबुक** (१७६५-१८३६), **स्टीवेंसन**, **ग्रिफिथ** आदि मुख्य थे।

(Agnes- German Indologists. pp.1-151)

ब्रिटेन के विद्वानों ने अपने राजनैतिक और मिशनरी हितों की दृष्टि से तुलनात्मक भाषावाद, गाथावाद, मानव ऐतिहासिकता एवं अन्य अनेक नवीनवादों की कल्पनाएँ कीं। १८४६ में, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी में मैक्समूलर के आने के बाद ब्रिटेन का, **हिन्दू धर्म शास्त्र** संबंधी समस्त साहित्य, असंगत क्यों न हो। मगर गैर-ब्रिटिश लेखकों ने या तो ईसाई मिशनरी भावना से या वेदादि के मौलिक ज्ञान के अभाव से या संस्कृत को यूरोपीय भाषाओं से सम्बन्धित करने के दुराग्रह के कारण विभिन्न अर्थ किए। ये सभी ब्रिटेन की तरह पक्षपाती नहीं थे। मगर इतना अवश्य है कि सभी पाश्चात्य विद्वान भलीभांति जानते थे कि वेद, भारतीय धर्म, दर्शन और संस्कृति के मूल आधार हैं और इनकी समुचित व्याख्या **निरुक्त** व **पाणिनि व्याकरण** के आधार पर ही हो सकती है। परन्तु किसी भी पाश्चात्य विद्वान ने भारतीय वेद भाष्य पद्धति को नहीं अपनाया। जिसका कि इसी समय में **महर्षि दयानन्द सरस्वती** (१८२५-१८८२) ने अपने वेद भाष्यों में प्रयोग कर उदाहरण प्रस्तुत किया था। भारतीय प्राचीन परम्परा इसी शैली को प्रामाणिक मानती है।

## इंग्लैंड में संस्कृत शिक्षा के लिए 'बोडेन चेयर' की स्थापना

१८१० ए.डी. तक, इंग्लैंड में संस्कृत शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं थी। सबसे पहले इंग्लैंड में, १८११ में ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी में संस्कृत भाषा की शिक्षा के लिए व्यवस्था की गई। इसके लिए एक कट्टर ईसाई सामने आया। वह था **कर्नल जोसेफ बोडन**। जो कि ईस्ट इंडिया कम्पनी की सेना में बम्बई में लेफ्टिनेंट-कर्नल रहा था। इसने अवकाश ग्रहण करने के बाद, अपनी समस्त सम्पत्ति, जो उस समय लगभग पच्चीस हजार पाँड थी, की वसीयत ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में संस्कृत-प्रोफेसर के एक पद की स्थापना के लिए कर दी; और विश्वविद्यालय ने भी कृतज्ञता स्वरूप इसका नाम 'बोडेन चेयर ऑफ संस्कृत' रख दिया।

## बोडेन चेयर का उद्देश्य

बोडेन चेयर का उद्देश्य, भारत के गुरुकुलों की तरह, केवल साहित्यिक दृष्टि से संस्कृत भाषा का पढ़ना-पढ़ाना नहीं था, बल्कि ब्रिटेन के राजनैतिक और ईसाई मिशनरियों के

धार्मिक हितों की पूर्ति के लिए था। कर्नल बोडेन ने अपनी वसीयत, जो कि १६ अगस्त १८११ को कैंटरबरी, यू.के. के न्यायालय में रजिस्टर्ड की गई, उसके मुख्य अंश और उद्देश्य इस प्रकार हैं:

"I do hereby give and bequeath all and singular my said residuary estate and effects with the accumulations thereof if any and the stocks nmnds and securities whereon the same shall have been laid out and invested tmto the University of Oxford to be by that Body appropnated in and towards the erection and endowment of a Professorship in the Sanskrit Language at or in any or either of the Colleges in the said University being of opinion that a more general and critical knowledge of that language will be a means of enabling my Countrymen to proceed in the conversion of Natives of India to the Christian Religion by disseminating a knowldge of the Sacred Scriptures amongst them lill:.Ore effectually than all other means whatsoever." (Bharti, pp. 249-50)

**अर्थात्-** "मैं अपनी समस्त ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय को दान देता हूँ। वे इसे विश्वविद्यालय या किसी कॉलेज में, जहाँ वे उचित समझें प्रयोग करें ताकि उसके देश (इंग्लैंड) वासियों को संस्कृत भाषा का समुचित ज्ञान हो सके, जो भारत के मूल निवासियों के धर्मग्रंथों को समझने और उनके ईसाईयत में धर्मान्तरण में सहायक हो सकें।" (भारती पृ. २४९-२६०)

इस प्रकार १८११ में, ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में संस्कृत चेयर की स्थापना हो तो गई थी। लेकिन उस समय इसके लिए कोई मनचाहा व्यक्ति न मिल सका। बोडेन चेयर पर प्रतिष्ठित होने वालो सबसे पहला व्यक्ति **एच.एच. विलसन** (१७८६-१८६०) था। वह भारत में मेडीकल प्रोफेशन के एक सदस्य के रूप में, १८०८ में आया तथा १८३२ तक यहाँ रहा। भारत निवास के इस काल में उसने संस्कृत भाषा सीखी, इस आशा और उद्देश्य से कि शायद यह भाषा ज्ञान उसे हिन्दू धर्म शास्त्रों को समझने और आवश्यकता होने पर विकृत अर्थ करने और भारतीयों को ईसाईयत में धर्मान्तरित करने में सहायक हो सके। इस संस्कृत ज्ञान के आधार पर ही विलसन को, १८३२ में, ऑक्सफोर्ड विश्व विद्यालय में संस्कृत की बोडेन चेयर का प्रथम अधिष्ठाता बनाया गया। यहाँ उसने सबसे पहले मिशनरियों के लिए **"दी रिलीजन एण्ड फिलोसोफिकल सिस्टम ऑफ दी हिन्दूज"** नामक पुस्तक लिखी। इस पुस्तके के लिखने के उद्देश्य के विषय में उसने कहा:

"These lectures were written to help candidates for a prize of £ 200/= given by John Muir, a well known Haileybury (where candidates



were prepared for Indian Civil Services) man and great Sanskrit scholar, for the best refutation of the Hindu Religious Systems." (Bharti, p.9)

**अर्थात्-** "यह लेखमाला उन व्यक्तियों की सहायता के लिए लिखी गई है, जो कि जॉन म्यूर द्वारा स्थापित दो सौ पौंड के पुरस्कार के लिए प्रत्याशी हों और जो हिन्दू धर्म ग्रन्थों का सर्वोत्तम प्रकार से खंडन कर सकें।" (भारती, पृ. ९)

## बोडेन चेयर का दूसरा अधिष्ठाता

१८६० में, प्रो. विलसन के निधन के बाद, बोडेन चेयर का दूसरा अधिष्ठाता **मौनियर विलियम्स** हुआ। १८१९ में बम्बई में जन्मा मौनियर एक कट्टर ईसाई था। यह हिन्दू धर्म को नष्ट करने को और भी अधिक वचनबद्ध था। जैसा कि उसने अपनी पुस्तक '**ए संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी**' की भूमिका में लिखा:

"In explanation I must draw attention to the fact that I am only the second occupant of the Boden Chair, and that its founder, Col. Boden, stated most explicitly in his will (dated August 15, 1811) that the special object of his munificent bequest was to promote the translation of the Scripture in Sanskrit so as to enable his countrymen to proceed in the conversion of the natives of India to the Christian religion."

"It was on this account that, when my distinguished predecessor and teacher, Professor H. H. Wilson, was a candidate for the Chair in 1832, his lexicographical labours were put forward as his principal claim to election."

"Surely it" need not be thought surprising, if following in the footsteps of my venerated master, I have made it the chief aim of my professional life to provide facilities for the translation of the Sacred Scriptures in Sanskrit and for the promotion of a better knowledge of the religions and customs of India, as the best key to a knowledge of the religious needs of our great Eastern Dependency. My very first public lecture delivered after my election in 1860 was on "The Study of Sanskrit in Relation to Missionary Work in India" (published in 1861). (Pref. to the New Edition of Sanskrit- English Dictionary by M.M. Williams pp.IX-X)

**अर्थात्-** "मैं, इस तथ्य की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहूँगा कि मैं तो केवल बोडेन-चेयर का दूसरा अधिष्ठाता हूँ और उसके संस्थापक कर्नल बोडेन ने अपनी वसीयत (१५ अगस्त १८११) में सबसे अधिक स्पष्टता के साथ लिखा है कि उसकी वसीयत का विशेष उद्देश्य संस्कृत धर्मशास्त्रों का अनुवाद करना है ताकि उसके देश (इंग्लैंड) वासी भारत के मूल निवासियों का ईसाईयत में धर्मान्तरित करने के योग्य हो सकें।"

“इसी कारण जब मेरे शिक्षक और सुप्रसिद्ध पूर्व अधिकारी **प्रो. एच.एच. विलसन**, जो कि १८३२ में इस चेयर के प्रत्याशी थे, तो उनके लेखन कार्य के कारण उनको उस पद के मुख्य दावेदार के रूप में प्रस्तुत किया गया था”। निश्चय ही इसे आश्चर्यजनक न समझा जाए कि यदि मेरे श्रद्धेय गुरुजी के चरण चिन्हों पर चलते हुए मैंने अपने व्यवसायिक जीवन का मुख्य उद्देश्य भारतीयों के धर्म ग्रंथों का अंग्रेजी में भाष्य करने के लिए सुविधा प्रदान करना है तथा भारत के धर्मों और रीतिरिवाजों की अच्छी जानकारी को बढ़ावा देना है।”

१८६० में, बोडेन चेयर के लिए चुने जाने के बाद अपनी पुस्तक **“दी स्टडी ऑफ संस्कृत इन रिलेशन टू मिशनरी वर्क इन इंडिया”** (१८६१) इसमें उसने एक मिशनरी की तरह स्पष्ट कहा:

“When the walls of the mighty fortress of Hinduism are encircled, undermined and finally stormed by the soldiers of the Cross, the victory to Christianity must be signal and complete.” (p.262)

**अर्थात्-** “जब हिन्दू धर्म के मजबूत किलों की दीवारों को घेरा जाएगा, उन पर सुरंगे बिछाई जाएंगी और अंत में ईसामसीह के सैनिकों द्वारा उन पर धावा बोला जाएगा तो ईसाईयत की विजय अन्तिम और पूरी तरह होगी” (वही पृ. २६२)

इन उपरोक्तियों से सुस्पष्ट है कि बोडेन चेयर के दोनों अधिष्ठाताओं ने संस्कृत शिक्षा के नाम पर ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के अपने अधिकारिक पद का ईसाईयत के हितों के लिए पूरी तरह से दुरुपयोग किया। उन्होंने प्राच्यविद्याओं के शोध की आड़ में अपने मिशनरी उद्देश्यों की पूर्ति के लिए लगातार प्रयास किया।

**मैक्समूलर** ने भी १८४७ से ही बोडेन चेयर के उद्देश्य की पूर्ति के लिए अथाह परिश्रम किया; **ऋग्वेद** का विकृत भाष्य और बोडेन चेयर पाने के लिए चुनाव भी लड़ा। मगर अंग्रेज **मोनियर विलियम्स** के पक्ष में ८८३ वोटों के विरुद्ध, ६१० वोट पाने के कारण वह हार गया (मिश्रा, पृ. १६)। क्योंकि वह एक गैर-ब्रिटिश था। इस संदर्भ में **एन्साईक्लोपीडिया ब्रिटैनिका** (संव. XVII पृ. १२७) बतलाता है -

**“मैक्समूलर के जीवन की यह एक बहुत बड़ी निराशा थी, जिसका उसके ऊपर बहुत समय तक प्रभाव रहा।” मगर फिर भी वह हिन्दू धर्म शास्त्रों के विकृतीकरण और भारतीय धार्मिक नेताओं का ईसाईयत में धर्मान्तरण के लिए प्रयास करता रहा” ।**



## ०४. मैक्समूलर द्वारा ही वेद भाष्य क्यों?

### मैक्समूलर कौन था?

इस प्रश्न का उत्तर ढूँढने से पहले, यह जान लेना उपयोगी होगा कि यह मैक्समूलर कौन था? जर्मन फ्रेडरिक मैक्समूलर का जन्म ६ दिसम्बर १८२३ को डेसो नगर में हुआ। उसके पिता **विल्हेल्म म्यूलर** (१७९४-१८२७) एक पुस्तकालयाध्यक्ष थे। उसने १८४१ में निकालाई स्कूल लिपिजिग से, हाईस्कूल और अठारह महीनों से भी कम समय में सितम्बर १८४३ को 'भाषा विज्ञान' में लिपिजिग विश्वविद्यालय से डॉक्टरेट की डिग्री प्राप्त की (चौधरी, पृ. ३३)। उसे अध्यापक हरमैन ब्रोरवोस (१८०६-१८७७) ने उसे और अधिक संस्कृत पढ़ने की प्रेरणा दी। परंतु उसके वैदिक या लौकिक संस्कृत के उच्च ज्ञान प्राप्त करने के कोई प्रमाण नहीं मिलते हैं।

अप्रैल १८४४ में, वह '**फ्रान्ज़ बाप**' से तुलनात्मक व्याकरण (Comparative grammar) एवं भाषा विज्ञान (language science) और **फ्रेड्रिक श्लेगल** से दर्शन शास्त्र (Philosophy) पढ़ने के लिए बर्लिन विश्वविद्यालय गया, तथा १० मार्च १८४५ को पेरिस में प्रोफेसर **यूगोन बर्नोफ** (चौधरी, पृ. ४५) के पास **ऋग्वेद** पढ़ने गया। यहाँ उसने बर्नोफ के **सायण भाष्य** आधारित वेद पर व्याख्यान सुने। उसे यहाँ फ्रेन्च भाषा न आने के कारण कठिनाई रही तथा जीविका के लिए प्राच्यविदों के लिए संस्कृत के प्राचीन ग्रन्थों का मिलान करता था (चौधरी, पृ. ४७)।

इधर इसी समय इंग्लैंड में **प्रो. एच.एच. विल्सन** को एक युवा संस्कृत विद्वान की आवश्यकता थी, और बर्नोफ ने इसके लिए मैक्समूलर का नाम सुझाया। बेरोन जे. बान बुनसन, जो लंदन में पूरशियन मिनिस्टर तथा प्रभावशाली व्यक्ति था, ने मैक्समूलर को पिता समान संरक्षण दिया। उसने '**क्रिश्चियनिटी एण्ड मैनकाइंड**' (Christianity and

mankind) पुस्तक भी लिखी थी। उसके सहयोग से मूलर जून १८४५ को लंदन पहुँच गया तथा जीवन भर विभिन्न पदों पर ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी से जुड़ा रहा, जहाँ उसने विशाल साहित्य लिखा।

### तालिका-१. मैक्समूलर द्वारा रचित साहित्य

वर्ष	पुस्तक का नाम
१८४४	हितीपदेश (जर्मन भाषा में अनुवाद)
१८४७	मेघदूत (कविता में जर्मन भाषा में अनुवाद)
१८४७	बंगाली का भारत की जनजातीय भाषाओं से सम्बन्ध
१८४९-७३	ऋग्वेद एण्ड सायणाज्ज कमेंट्री
१८५३	ऐसेज ऑन टुरानियन लैंग्वेजिज़
१८५३	ऐसेज ऑन इन्डियन लौजिक
१८५४	प्रपोजल फॉर ऐ यूनीफार्म मिशनरी एल्फाबेट
१८५४	लैंग्वेज ऑफ दी सीट ऑफ पाँवर
१८५६	ऐसेज ऑन कम्पेरेटिव मार्टिथोलोजी
१८५७	इयश्चेलीबे (१४ वाँ संस्करण, १९०१, जर्मन में)
१८५७	बुद्धिस्ट पिलग्रिम्स
१८५९	जर्मन क्लासिक्स
१८५९	दी हिस्ट्री ऑफ ऐंशिएन्ट संस्कृत लिटरेचर
१८६१	लेक्चरर्स ऑन दी साइंस ऑफ लैंग्वेज, खंड (१४ वाँ संस्करण, १८८६)
१८६२	ऐंशिएन्ट हिन्दू ऐस्ट्रोनौमी
१८६४	लेक्चर्स ऑन दी साइंसऑफ लैंग्वेज, खंड-२
१८६६	हितीपदेश टैक्सटस-नोट्स
१८६६	संस्कृत ग्रामर
१८६७-७५	चिप्स फ्रॉम ए जर्मन वर्कशॉप, (४ खंड)
१८६८	स्ट्रेटिफिकेशन ऑफ लैंग्वेज
१८६९	ऋग्वेद ट्रान्सलेखन (खंड १)
१८६९	ऋग्वेद प्रातिशाक्य

१८७०	धम्मपद अनुवाद
१८७१	लैटर्स ऑन वार
१८७३	ऋग्वेद इन संहिता एण्ड पद टैक्सट्स
१८७३	डारविन्स फिलॉसफी ऑफ लैंग्वेज
१८७३	इन्ट्रोडक्शन टू साइंस ऑफ रिजीजन
१८७६	जे.बी. वासडोव (जर्मन में)
१८७६	शिलर्स ब्रीफवेचलन (जर्मन में)
१८७६	ऑन स्पैलिंग
<b>१९७६ में यूनीवर्सिटी से अवकाश प्राप्ति के बाद</b>	
१८७८	हिबर्ट लेक्चर्स
१८७९	उपनिषद्स ट्रान्सलेशन
१८८१	सेलेक्टिड ऐसैज़
१८८१	कान्ट्स क्रिटिक, ट्रान्सलेशन
१८८२	इन्डिया, व्हाट केन इट टीच अस! (सात लेक्चर्स)
१८८४	बायोग्राफिकल ऐसैज़
१८८७	साइंस ऑफ थॉट
१८८७	ला कारिटा ऑफ ऐंडिया डेल सारटो
१८८८	बायोग्राफीज ऑफ वर्ड्स
१८८८	साइंस ऑफ थॉट, (तीन लेक्चर्स)
१८८८-९२	ग्रिफोर्ड लेक्चर्स (तीन)
१८८९	साइंस ऑफ लैंग्वेज (तीन लेक्चर्स)
१८९०-९२	ऋग्वेद (न्यू एडीशन)
१८९३	आपस्तम्ब सूत्र (अनुवाद)
१८९४	चिप्स फ्रॉम ए जरमन वर्कशॉप (४ खंड रिवाइज्ड)
१८९७	साइंस ऑफ माइथोलौजी (२ खंड)
१८९८	औल्ट लैंगसिने (खंड १, जर्मन में)
१८९८	रामकृष्ण
१८९९	औल्ट लैंग सिने (खंड-२, जर्मन में)

१८९९	सिक्स सिस्टम्स ऑफ इंडियन फिलॉसफी
१८९९	डास फरडेवुली (जर्मन में)
१९००	ट्रान्सवाल वार
१९०१	ऑटोबायोग्राफी एण्ड लास्ट ऐसेज़ (२ खंड- मरणोपरान्त प्रकाशित)

अब प्रश्न उठता है कि ब्रिटिश सरकार को वेद भाष्य, वह भी मैक्समूलर द्वारा ही कराने की आवश्यकता क्यों हुई?

1. वे कौन सी परिस्थितियाँ और विवशताएँ थी जिनके कारण ब्रिटिश शासकों और ईस्ट इंडिया कम्पनी को १८४७ में ऋग्वेद के अंग्रेजी में भाष्य कराने की आवश्यकता हुई?
2. क्या उस समय ऋग्वेद के, सायण के अलावा, अन्य विद्वानों के भाष्य नहीं थे?
3. मैक्समूलर जैसे संस्कृत और अंग्रेजी दोनों ही भाषाओं में अल्पज्ञ को, ऋग्वेद जैसे रहस्यमय और जटिल ग्रंथ का अनुवाद करने को क्यों चुना गया? जबकि ऑक्सफोर्ड एवं जर्मनी में अनेक अधिक विद्वान उपलब्ध थे।
4. ब्रिटिश सरकार ने मैक्समूलर और उसके भाष्य का इतना व्यापक प्रचार क्यों किया? उसे हिन्दुओं और हिन्दू धर्म शास्त्रों का परम हितैषी और वेदों का महान विद्वान कहकर इतना मान-सम्मान और ख्याति क्यों दी?

इन प्रश्नों का उत्तर निम्नलिखित तथ्यों एवं परिस्थितियों के आधार पर ढूँढा जा सकता

है:

- (1) ऋग्वेद एक विशाल ग्रंथ है। इसमें दस मंडल, १०२८ सूत्र, १०५८० मंत्र और प्राचीन वैदिक संस्कृत के लगभग १५३८२६ शब्द हैं। इसके अंग्रेजी में अनुवाद, सम्पादन और प्रकाशन करने के लिए एक सक्रिय विद्वान को कम से कम ८-१० वर्ष तक लगेंगे। अतः उन्हें एक ऐसा व्यक्ति चाहिए था, जो इस कार्य के लिए इतना समय लगा सके, भले ही वह किसी वरिष्ठ व्यक्ति की अपेक्षा कम योग्यता वाला हो।
- (2) वह व्यक्ति गैर-ब्रिटिश हो। क्योंकि उस समय भारत में ब्रिटिशों के विरुद्ध भारी आक्रोश, असंतोष और विरोध था।

- (3) वह व्यक्ति ब्रिटिश, ईसाई मिशनों, मिशनरियों, कूटनीतिज्ञों और ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी की नीतियों और योजनाओं के अनुसार ऋग्वेद का अंग्रेजी में भाष्य करने को तैयार हो।

### अब मैक्समूलर की योग्यताओं को ऊपर लिखीं शर्तों और परिस्थितियों की दृष्टि से देखिए:

निश्चय ही प्रो. विल्सन मैक्समूलर की अपेक्षा कहीं अधिक योग्य था। लेकिन सर्वप्रथम तो वह काफी अधिक आयु (६० वर्ष) का था; दूसरे वह एक अंग्रेज था, और उस कौम का था, जो पहले ही भारत को गुलाम बना चुकी थी और अब उसके लोगों (हिन्दुओं को) ईसाई बनाना चाहता था। और तीसरे वह पहले से ही संस्कृत-प्रोफेसर की **बोडन येचर** पर आसीन था। इसलिए किसी ने भी इस संभावना को नहीं माना कि इस पद पर रहते हुए प्रोफेसर विल्सन वेदभाष्य के लिए पर्याप्त समय निकाल सकेंगे। एक दूसरे अंग्रेज संस्कृत विद्वान **जॉन म्यूर** था, जो पहले से ही ईस्ट इंडिया कम्पनी की सेवा में था। उसके पास इस कार्य के लिए समय नहीं था।

इनके अलावा गैर-ब्रिटिश में से पैरिक्स में **यूगौन बर्नोफ** पहले से ही प्रोफेसर था और इस कार्य के लिए काफी बड़ी उम्र का भी था। जर्मनी में उस समय **फ्रांज बॉप** (१७९१-१८६७) पहले से ही '**औरियंटल और जर्मन फिलोसफी**' को प्रोफेसर था एवं ६६ वर्ष का था। इसी प्रकार मैक्समूलर और संस्कृत शिक्षक **फ्रेडरिक अनॉल्ड ब्रोरवौस** (१८०६-१८७७) लिपिजिग विश्वविद्यालय में संस्कृत का प्रोफेसर था, तथा **ओटो बोथलिंग** (१८१५-१९०४) सेन्टपीटर्सबर्ग में प्रोफेसर था। इन विद्वानों के अलावा **रुडोल्फ वॉन रॉथ** (१८२१-१८८१) और **थ्योडोर गोल्डस्टकर** (१८२१-१८७२) मैक्समूलर के समकालीन थे, फलस्वरूप इनमें से कोई भी कंपनी द्वारा नहीं चुना गया।

इन सब कारणों के फलस्वरूप प्रतिस्पर्धा के मैदान में केवल मैक्समूलर ही रह गया। अन्त में ईस्ट इंडिया कम्पनी के डाइरेक्टरों ने अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए मैक्समूलर को चुना। इन कारणों के अलावा, मैक्समूलर को एक मन पसंद नौकरी की अत्यंत आवश्यकता थी। साथ ही मैक्समूलर भी एक कट्टर ईसाई था। जो कि क्राइस्ट के लिए, अपनी अन्तरात्मा के विरुद्ध मन मसोस कर भी, किसी हद तक जाने को तैयार हो सकता था।

### कम्पनी द्वारा चयन पर असीम प्रसन्नता

ईस्ट इंडिया कम्पनी ने, १५ अप्रैल १८४७ को, अपनी नीतियों और योजनाओं के अनुसार मैक्समूलर द्वारा ऋग्वेद का अंग्रेजी में भाष्य कराने का निर्णय लिया। इस निर्णय के

दूसरे ही दिन मैक्समूलर ने अपनी माँ को एक पत्र लिखा जिससे उसकी प्रसन्नता और उत्तेजना प्रकट होती है-

April 15, 1847  
5, Newman's Row,  
Lincoln Inn, Fields-

At last the long conflict is decided, and I have carried off, so to speak, the prize! I can yet hardly believe that I have at last got what I have struggled for so long, entire independence, and I am filled with the thought of how much more I have gained than I deserved I am to hand over to the Company, ready for the press, fifty sheets each year-the same I had promised to Samter in Germany; for this I have asked £ 200 a year, £ 4 a sheet. They have been considering the matter since December, and it was only yesterday that it was officially settled. I have to read the corrections, and shall have plenty of time left to devote to my studies As the work will be above 400 sheets, I have a certain position for the next eight years and the work is really so light I could take another post with it. This, in fact, has been already offered to me, i.e. a place as librarian at the British Museum with £150 a year. But on Bunsen's advice I have refused this and now what do you say, dearest mother? Is it not more than I could have ever expected ? But only think, I had not a penny left, and that in spite of even) effort to make a little money. I should have had to return to Germany had not Bunsen stood by me and helped by word and deed."

(LLMM, Vol. 1, pp. 60-61)

१५ अप्रैल १८४७,  
न्यूमैनस रोव,  
लिनकन इन, फील्ड्स;

आखिर में उस लम्बे संघर्ष पर फैसला हो गया और मैंने बाजी मार दी, यानी मुझे पुरस्कार मिल गया। मुझे अब भी यकीन नहीं होता कि अंत में मुझे वह सब मिल गया जिसके लिए मैंने लंबे समय से संघर्ष किया, संपूर्ण आजादी और मेरा मन इस विचार से भर गया है कि मुझे उससे कितना ज्यादा मिला है, जितने के लिए मैं योग्य हूँ...। मुझे कम्पनी को प्रेस के लिए तैयार पचास शीटें प्रति वर्ष देनी होंगी....। इसके लिए मैंने दो सौ पाँड प्रतिवर्ष मांगे थे,



यानी चार पौंड प्रति शीट। वे इस विषय पर दिसम्बर (१८४६) से विचार कर रहे थे और केवल कल ही मुझे आधिकारिक रूप से पता चला है कि मामला (मेरे पक्ष में) तय हो गया है। मुझे गलतियों को पढ़कर सुधारना है। अतः मेरे पास अपने अध्ययन के लिए पर्याप्त समय बचेगा ...। क्योंकि सारा काम ४०० शीटों से अधिक का होगा। अतः मुझे अगले आठ वर्षों तक के लिए निश्चित काम मिल गया है और वास्तव में कार्य इतना हल्का है कि इसके साथ में एक और पद संभाल सकता हूँ और ब्रिटिश म्यूजियम में लायब्रेरियन का पद एक सौ पचास पौंड प्रति वर्ष का मुझे मिल भी गया है। लेकिन बुनसन के परामर्श पर मैंने वह काम अस्वीकार कर दिया है ...। मेरी सबसे प्यारी माँ, अब तुम इस पर क्या कहती हो? ...लेकिन जरा सोचो, मेरे पास एक पैनी भी नहीं बची थी, वह भी जरा-सा भी धन कमाने के हर संभव प्रयास करने पर भी। यदि बुनसन मेरे साथ वचन और कर्म से खड़ा न होता और सहायता न करता तो मुझे विवश होकर जर्मनी लौटना पड़ता।

(जी.प. खंड १, पृ. ६०-६१)

उपरोक्त पत्र से सुस्पष्ट है कि मैक्समूलर स्वयं मानता है कि-

- (१) उसे अपनी योग्यता और आशा से कहीं अधिक मिला है;
- (२) ऋग्वेद का भाष्य एक हल्का-फुल्का काम है। क्योंकि शायद उसने विचारा हो कि उसके भाष्य को जाँचने और मूल्यांकन करने वाला कोई अन्य नहीं है, इसलिए उसका लिखा सब कुछ स्वीकार्य होगा।

लेकिन स्टुअर्ट पिगौट के अनुसार-

"The Rigveda is a curious document. The language is elaborated and self consciously literary, and the composition, based on syllabic verse -form is often extremely complicated. It is a laborious and complicated anthology."

(Prehistoric India, pp. 256-68)

**अर्थात्-** "ऋग्वेद एक रहस्यमय ग्रंथ है, इसकी भाषा परिष्कृत, विवेकपूर्ण एवं साहित्यिक है और उसकी रचना छन्दमयी होने के कारण अक्सर अत्यन्त जटिल है"।

(प्रीहिस्टोरिक इंडिया, पृ. २५६-६८)

केवल स्टुअर्ट पिगौट ही नहीं, बल्कि प्राचीन काल से अब तक सभी प्राच्यविद इस बात पर सहमत हैं कि ऋग्वेद की संविस्चना अत्यंत पेचीदा है और इसके शुद्ध अनुवाद के लिए **वैदिक व्याकरण** और प्राचीन भारतीय परम्पराओं के ज्ञान सहित **वैदिक संस्कृत भाषा** के गहन अध्ययन की आवश्यकता है। जबकि विद्वत्ता मैक्समूलर के पास कभी भी नहीं थी।

लेकिन मैक्समूलर जैसे ढोंगी व धोखेबाज अनुवादक और छद्मवेशी लेखक के लिए यह काम विश्वय ही हल्का-फुल्का हो सकता है।



elibrary.thearyasamaj.org

## ०६. क्या मैक्समूलर वेद भाष्य करने योग्य था?

ईस्ट इंडिया कम्पनी ने मैक्समूलर को ऋग्वेद का अंग्रेजी में भाष्य करने के लिए, यह विश्वास करके चुना कि वह वैदिक संस्कृत का विद्वान है। जबकि सच्चाई यह है कि वह न वैदिक संस्कृत जानता था और न अंग्रेजी ही; क्योंकि उसकी मातृभाषा तो जर्मन थी। मैक्समूलर ने स्वयं स्वीकारा है कि इंग्लैंड आने से पहले जब १८४६ में पैरिस में था तो वह भारतीय विद्वान **रवीन्द्रनाथ टैगौर** के दादा **द्वारिकानाथ टैगौर** के पास अपनी अंग्रेजी सुधारने के लिए प्रतिदिन उसके होटल में जाया करता था (चौधरी, पृ. ६०); और जब वह लंदन में रहने लगा तो अपनी मकान मालकिन अंग्रेज महिला से बातचीत करते हुए उसे अक्सर कठिनाई होती थी (माईओटो-बायोग्राफी, पृ. ९९, ११६)। इंग्लैंड में आने के बाद में उसने चार वर्ष तक अंग्रेजी सीखी और १८६१ में, क्राइस्ट चर्च कॉलेज, लंदन ने उसे एम.ए. की मानद डिग्री ली (चौधरी, पृ. ६०)। लेकिन लंदन आकर भी उसने संस्कृत नहीं सीखी।

### मैक्समूलर का वैदिक संस्कृत ज्ञान

मूलर न संस्कृत बोल सकता था और न लिख सकता था, केवल लौकिक संस्कृत पढ़ सकता था। इस संदर्भ में निराद चौधरी लिखते हैं कि "१८६४ में नीलकंठ गोरह नामक एक भारतीय, ऑक्सफोर्ड में मैक्समूलर से मिलने आया और उसने संस्कृत में कुछ प्रश्न किए, जिन्हें मूलर न समझ सका और अंग्रेजी में पूछा कि तुम किस भाषा में बोल रहे हो?" गोह ने कहा "क्या तुम संस्कृत नहीं समझते हो? तो मूलर ने जबाब दिया "नहीं! मैंने कभी किसी को संस्कृत बोलते नहीं सुना। हम संस्कृत केवल पढ़ते हैं।" (वही, पृ. २९२)।

इसके ४४ वर्ष बाद भी मैक्समूलर संस्कृत बोलने व लिखने योग्य न हो सका। उसने अपने संस्कृत ज्ञान के बारे में १८९८ में, नेपाल के संस्कृत विद्वान छविलाल को एक पत्र में लिखा:

Norhan Gards, Oxford,  
28th September, 1898.

**Pandit Chhavilal,**

Dear Sir, Accept my best thanks for your Natakas, Sundara Charita and Kushalavodaya, the Vrithalankara, and the Sanskrit verses addressed to me. As soon as I find time I hope to read your two plays, but I am getting so old (75) and have still so much to do, that I have but little leisure left to me. I am surprised at your familiarity with Sanskrit. We, in Europe, shall never be able to rival you in that. We have to read but never to write Sanskrit. To you it seems as easy as English or Latin is to us. You see, we chiefly want to know what INDIA is and has been—we care for its literature, its philosophy, etc., and that takes up so much time, that we never think of practising composition, that we care admire all the more because we cannot rival, and I certainly was filled with admiration when I read but a few pages of your Sundara Charita."

"And now a question. Mr. Byramji Malabari is publishing at Bombay (India Spectator) translation of my Hibbert Lectures in Marnt/zi, Bengali, Gujarati, Tamil, etc. He is very anxious to find a scholar to translate them into Sanskrit. One translation was made, but it was too imperfect."

"Would you lmdertake that work? Of course, you would be paid for your trouble. Or could you recommend any friend of yours, who is competent to undertake such a work ? And would you write direct to B. Malabari, India Spectator Office, Bombay, inform him of what could be done in Nepal." "Thanking you once more for your valuable presents, I remain.

yours faithfully-  
F. Max Muller".

**(Vritalankar, 1900; Bharti, pp. 93-94)**

नौरहम गार्डस,  
ऑक्सफोर्ड,  
२८ सितंबर, १८९८

### श्रीमान पंडित छविलाल,

मेरा हार्दिक धन्यवाद! आपने अपने नाटक, सुन्दर चरित और कुद्वालवोदय, वृहद अलंकार और संस्कृत छंद जो मेरे लिए लिखे हैं, मिले। जैसे ही मुझे समय मिलेगा, मुझे आशा है, कि मैं आपके दोनों नाटकों को पढ़ूंगा। लेकिन अब मैं इतना बूढ़ा (७५ वर्ष) हो चला हूँ और काम अभी बहुत बाकी है कि मुझे विश्राम के लिए बहुत थोड़ा समय मिलता है। मुझे आपके संस्कृत ज्ञान पर आश्चर्य है। यूरोप में हम लोग कभी भी इस विषय में आपकी बराबरी नहीं कर सकेंगे। हमको संस्कृत पढ़ना पड़ता है, परंतु कभी लिखना नहीं पड़ता। ऐसा प्रतीत होता है कि तुम्हें संस्कृत ऐसी लगती है, जैसी कि हमें अंग्रेजी या लैटिन। तुम ऐसा मानो कि हम मुख्यतया यह जानना चाहते हैं कि भारत क्या है? और क्या था? हम केवल उसके साहित्य, उसके दर्शन आदि की ओर ध्यान देते हैं और इसी में इतना समय लग जाता है कि हम कभी लिखने व रचना आदि के अभ्यास की सोचते भी नहीं हैं। हम इसलिए आपकी प्रशंसा करते हैं। क्योंकि हम आपकी बराबरी नहीं कर सकते और मैं निश्चय ही आपकी प्रशंसा में प्रफुल्लित हो जाता हूँ, जब भी मैं आपके 'सुन्दरचरित' नाटक के केवल कुछ पन्ने पढ़ता हूँ।"

"अब एक प्रश्न है। मि. बेरामजी मालाबारी बंबई में (इंडिया स्पेक्टेटर) मेरे हिबर्ट लेक्चरों का अनुवाद कराके मराठी, बंगाली, गुजराती, तमिल आदि भाषाओं में छाप रहे हैं। वे एक ऐसे विद्वान के खोजने में अति उत्सुक हैं जो इनका संस्कृत में अनुवाद कर सके। एक ऐसा अनुवाद किया भी गया था, मगर वह संतोषजनक नहीं था। क्या आप इस काम को करना चाहोगे? निःसंदेह इसके लिए आपको पारिश्रमिक दिया जाएगा अथवा क्या आप इसके लिए अपने किसी मित्र की सिफारिश कर सकते हो? और क्या आप सीधे मालाबारी को इंडिया स्पेक्टेटर ऑफिस, बंबई के पते पर लिखेंगे; तथा कुछ नेपाल में किया जा सकता है, उसके बारे में सूचित करेंगे?"

आपका महत्वपूर्ण उपहारों के लिए एक बार पुनः धन्यवाद।

मैं आपका विश्वासपात्र-

**एफ. मैक्समूलर"**

(भारती, पृ. ९३-९४)

मैक्समूलर के संस्कृत ज्ञान के विषय, उसके समकालीन वैदिक संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान एवं वेदों के भाष्यकार स्वामी दयानन्द सरस्वती (१८२५-८२) ने अपने ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में इस प्रकार लिखा है: "जो लोग कहते हैं कि जर्मनी देश में संस्कृत विद्या का बहुत प्रचार है और जितना संस्कृत मैक्समूलर साहब पढ़े हैं, उतना कोई नहीं पढ़ा!, यह बात कहने मात्र है, क्योंकि **"यस्मिन्देशे द्रमोनास्ति वत्रैरण्डोह्लपि द्रमायते"** अर्थात् जिस देश में कोई वृक्ष

नहीं होता, उसे देश में एरण्ड ही को बड़ा वृक्ष मान लेते हैं।" वैसे ही यूरोप देश में संस्कृत विद्या का प्रचार न होने से जर्मन लोगों और मैक्समूलर साहब ने थोड़ा-सा पढ़ा, वही उस देश के लिए अधिक है। परंतु आर्यावर्त देश की ओर देखें तो उनकी बहुत न्यून गणना है। क्योंकि मैंने जर्मनी निवासी के एक प्रिन्सीपल के पत्र से जाना कि जर्मनी देश में संस्कृत-चिट्ठी को अर्थ करने वाले भी बहुत कम हैं।" (प्र., 261)

वास्तव में मैक्समूलर को लौकिक संस्कृत का प्रारम्भिक ज्ञान था, न कि वैदिक संस्कृत का, जो कि पाणिनीय व्याकरण और निरुक्त के आधार पर स्पष्ट की जाती है। जिसे कि वह नहीं जानता था, और न उसने कभी जानने का प्रयास ही किया।

## मैक्समूलर ने स्वयं अपना संस्कृत ज्ञान अपर्याप्त माना

मैक्समूलर, जिसे ऋग्वेद का भाष्य करना एक हल्का-फुल्का काम लगा था, पहले दो खंडों को (१८४९, १८५४ में) प्रकाशित करने के बाद ही उसे वह काम अति कठिन, बड़ा और उबाऊ लगने लगा। जबकि दूसरे खंड में जर्मनी के विलियम आर्चर ने उसकी सहायता की थी। अब वह उस कार्य से ऊबने लगा। क्योंकि वह वेद को समझने और उसका भाष्य करने के लिए पूर्णतया अयोग्य था। इसीलिए वह भारत आना चाहता था ताकि वैदिक संस्कृत का समुचित ज्ञान प्राप्त कर सके। जैसा कि उसके बुनसन को नीचे लिखे पत्र से सुस्पष्ट है:

55 St. John Street,

Oxford,

August 25, 1856

Whether I shall be able to do this is doubtful, for without my love for antiquity and the past, my dreams for the future return again and again, and I feel somewhat drawn to India- a desire difficult to resist in the end. Only I do not know how to get there; but my life here seems so aimless and unfruitful that I shall not be able to bear it for very much longer. I thought the other day whether I could not manage to go to India with the Maharaja Dhulip Singh. He is very well spoken of, and he returns next year after having learnt in England what good things he would do some day for his fatherland in India. It seems to me it would form the natural nucleus of a small Indo Christian colony, and it is only necessary to create such a centre in order to exercise one's power of attraction on all sides. After the last annexation the territorial conquest of India ceases—

what follows next is the struggle in the realm of religion and of spirit, in which, of course, centre the interests of the nations.

India is much ripe for the Christianity than Rome or Greece were at the time of St. Paul. The rotten tree has for some time had artificial supports, because its fall would have been inconvenient for the government. But if the Englishmen come to see that the tree must fall. Sooner or later, then the thing is done, and he will mind no sacrifice either down my life, or at least to lend my hand to bring about this struggle I should like to lay down my life, or at least to lend my hand to bring about this struggle, like to go to India not as a missionary, that makes one dependent on the persons, nor do I care to go as a Civil Servant, as that would make me dependent on the government.

I should like to live for ten years quietly and learn the language, try to make friends, and then mischief of Indian priestcraft could be overthrown and the way opened for the entrance of simple Christian teaching, that entrance which this teaching finds into every human heart, which is free from the enslaving powers of priests and from the obscuring influence of philosophers. Whatever finds root in India soon overshadows the whole of Asia, and nowhere could the vital power of Christianity more gloriously realize itself than if the world saw it spring up there for a second time, in very different form than in the West, but still essentially the same.

“Much more could be said about this; a wide world opens before one... for which it is well worth while to give one’s life. And what is to be done here? Here in England? Here in Oxford?—nothing but to help polish up a few ornaments on a cathedral which is rotten at the base”....

(LLMM, Vol. 11, pp. 190-92).

५५ सेन्ट जॉन स्ट्रीट,

ऑक्सफोर्ड,

अगस्त २५, १८५६;

.... किसी तरह मैं यह (वेद भाष्य का कार्य) कर भी पाऊँगा, संदेहजनक है। क्योंकि प्राचीनता और अतीत के प्रति मेरे प्रेम के बिना मेरे भविष्य के लिए सपने बार-बार लौटते हैं और मैं भारत की ओर कुछ खिंचा अनुभव करता हूँ। एक ऐसी इच्छा जिसे अंत में दबाना

मुश्किल है। मैं केवल यही नहीं जानता कि मैं वहाँ कैसे पहुँचूँ। लेकिन यहाँ मेरा जीवन इतना लक्ष्यहीन और व्यर्थ प्रतीत होता है जिसे कि मैं बहुत अधिक समय तक सहन न कर पाऊँगा।" अभी हाल ही में मैंने सोचा कि क्या ऐसा संभव नहीं कि मैं महाराजा धुलीप सिंह के साथ भारत जा सकूँ। वह व्यक्ति सुविख्यात है और इंग्लैंड में शिक्षा समाप्त कर वह अगले वर्ष भारत लौटेगा और भारत में अपने पितृ देश के लिए कितना अच्छा काम कर सकेगा। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि वह एक स्वाभाविक छोटी-सी **इंडो-क्रिश्चियन कॉलोनी** का केन्द्र बन जाएगा और ऐसे एक केन्द्र को बनाने की आवश्यकता है ताकि वह सब तरह से आकर्षण का केन्द्र बन सके। संपूर्ण भारतीय क्षेत्र को अपने अधिकार में लाने के बाद अगला काम धर्म और राष्ट्रीय हितों के लिए संघर्ष करना है।"

"आज भारत ईसाईयत के लिए उससे कहीं ज्यादा उपयुक्त है, जितने कि सेंट पॉल के समय में रोम या ग्रीस थे। इस गले-सड़े वृक्ष के पास कुछ समय के लिए बनावटी सहारा था, क्योंकि तब उसका पतन सरकार के लिए असुविधा जनक है। लेकिन यदि अंग्रेज लोग यह देखना चाहते हैं कि वह पेड़ थोड़ा आगे पीछे चलकर गिर जाए तो यह काम हो जाएगा और वह इसके लिए देश छोड़ने एवं अपना जीवन बलिदान करने में भी नहीं हिचकिचाएगा। इस संघर्ष की सफलता के लिए, मैं अपना जीवन बलिदान करना चाहूँगा अथवा कम से कम उस संघर्ष को प्रारंभ करने के लिए मैं अपना पूरा सहयोग दूँगा।"

"मैं, भारत एक ईसाई मिशनरी के रूप में जाना बिल्कुल नहीं चाहता हूँ। क्योंकि इससे ईसाई पादरियों पर निर्भर होना पड़ेगा, और न मैं एक सिविल सेवक के रूप में जाना चाहता हूँ, इससे मुझे सरकार पर निर्भर होना पड़ेगा।

मैं वहाँ शान्ति से दस वर्ष रहकर भाषा (संस्कृत) सीखना एवं नए मित्र बनाना चाहता हूँ और उसके बाद देखूँगा कि मैं यह कार्य (वेद भाष्य) करने के योग्य हूँ भी कि नहीं। जिसके द्वारा भारतीय पुरोहितों के दुष्कृत्यों को उखाड़ फेंका जाए और फिर ईसाईयत की सीधी-सादी व सरल शिक्षाओं का द्वार खोला जा सके। ऐसी शिक्षाएँ, जो कि प्रत्येक मनुष्य के हृदय में प्रवेश करें, जो कि पुरोहितों की गुलाम बनाने वाली शक्तियों और दार्शनिकों के दुर्बोध विचारों के प्रभाव से मुक्त हों। भारत में जो कुछ भी विचार जन्म लेता है शीघ्र ही वह सारे एशिया में फैल जाता है और कहीं भी दूसरी जगह ईसाईयत की महानशक्ति अधिक शान से नहीं समझी जा सकती, जितनी कि दुनिया वहाँ दूसरी बात पनपते देखे, पश्चिम से बिल्कुल विभिन्न प्रकार से, लेकिन फिर भी मूल रूप वही हो।"

"इसके बारे में बहुत कुछ कहा जा सकता है, कार्य करने वाले के लिए एक विशाल क्षेत्र है, जिसके लिए यदि किसी को जीवन भी देना पड़े तो भी उचित है। और यहाँ क्या किया



जाए? यहाँ इंग्लैंड में? यहाँ ऑक्सफोर्ड में? कुछ नहीं, इसके अलावा कि उस कार्य में कुछ आभूषणों को चमका दिया जाए जिसकी नींव गल चुकी है।"

(जी.प., खंड, २, पृ. १९०-१९२)

उपरोक्त पत्र से पाठक समझ गए होंगे कि मैक्समूलर भारत में आकर हिन्दू धर्म को समूल नष्ट करने के लिए अपना जीवन भी बलिदान करने को तैयार था। वह दस वर्ष तक संस्कृत भी सीखना चाहता था। इससे सुस्पष्ट है कि वह संस्कृत में नौसिखिया व धर्मान्तरणकारी मात्र था। तथा वेद भाष्य करने के लिए उसे वैदिक संस्कृत के गहन अध्ययन की आवश्यकता थी। बुनसन को लिखे इस पत्र में मैक्समूलर ने अपने विश्वासपात्र मित्र के सामने हृदय खोलकर रख दिया है और एक धर्मान्तरणकारी ईसाई जैसा अपना असली चेहरा उजागर कर दिया है। वह गले-सड़े हिन्दू धर्म के वृक्ष को नष्ट करने के लिए अपने जीवन को भी बलिदान करने को तैयार है। अधिकांश ईसाई मिशनरियों की तरह, वह भी यही समझता था कि भारत ईसाईयत के लिए बहुत उपयुक्त है।

खेद है कि मैक्समूलर द्वारा ऊपर दी गई स्वीकारोक्तियों के बाद भी, कुछ भारतीय, विशेषकर सैक्यूलरवादी, इसे हिन्दू धर्म का मित्र और शुभचिन्तक मानते हैं। १ मार्च १९७२ को आकाशवाणी नागपुर केन्द्र से एक भाषण प्रसारित हुआ था जिसे कि **नागपुर टाइम्स** (६ मार्च) ने छापा। इसमें डॉ. एम. टी. सहस्रबुद्धे ने कहा:

"The lofty figure of this great European friend of India, and a veteran scholar of Sanskrit Linguistics and Philosophy should inspire us to use our own priceless treasures. Though a foreigner, he was full of love for India and its heritage."

(Bharti, p.53).

"संस्कृत भाषा और दर्शन शास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान यह (मैक्समूलर) भारत के मित्र हैं। इस यूरोपीय विद्वान के महान व्यक्तित्व और जीवन से हमें अपनी अमूल्य धरोहर का प्रयोग करने की प्रेरणा लेनी चाहिए। विदेशी होते हुए भी वह भारत और इसकी प्राचीन धरोहर का प्रेमी है।"

(भारती पृ. ५३)

काश! ऐसे लोगों ने मैक्समूलर की जीवनी व पत्रों को पढ़ा होता और प्राचीन वेद भाष्य प्रणाली पर आधारित महर्षि दयानंद के वेद भाष्य की मैक्समूलर के भाष्य से तुलना की होती तो उनकी आँखें खुल जातीं।

## पाश्चात्य वेद भाष्यकारों का संस्कृत ज्ञान

सभी पाश्चात्य विद्वानों ने वेद भाष्य लौकिक संस्कृत के ज्ञान के आधार से प्रारंभ किया, जोकि वेद भाष्य के लिए अपर्याप्त था तथा वहाँ पाणिनीय व्याकरण से संस्कृत शिक्षा की व्यवस्था नहीं थी। उन्हें केवल लौकिक संस्कृत का प्रारम्भिक ज्ञान था। यूरोपीय विद्वानों के संस्कृत ज्ञान के विषय में जर्मन दार्शनिक **शोपेनहर** लिखता है-

“...Our Sanskrit scholars do not understand their text much better than the higher class boys their Greek or Latin.”

( Bharti, p. 78).

**अर्थात्-** "हमारे संस्कृत विद्वान उनके संस्कृत ग्रंथों को इससे ज्यादा नहीं जानते हैं, जितने कि हमारे हाय सैकिन्डी कक्षा के विद्यार्थी लैटिन अथवा ग्रीक भाषा को जानते हैं"।

(भारती, प्र. 178)

वैदिक संस्कृत की अपनी अज्ञानता के अतिरिक्त मैक्समूलर यह भी भली-भांति जानता था कि संस्कृत व्याकरण के लिए **पाणिनीय व्याकरण** सर्वश्रेष्ठ है। वह लिखता है-

“The science of phonetics rose in India at a time when writing was unknown,..... I believe I shall not be contradicted by Hemlboltz, or Ellis, or other representatives of phonetic science, if I say that, to the present day, the phoneticians of India of the 5th century B.C. are unsurpassed in their analysis of the elements of language. In grammar, I challenge any scholar to produce from any language a more comprehensive collection and classification of all the facts of a language than what we find in Panini's Sutas.”

(The Lectures on the Origin and Growth of Religion. P.146).

**अर्थात्-** "ध्वनि विज्ञान का जन्म भारत में उस समय हुआ जबकि लेखन शैली अज्ञात थी। मेरा विश्वास है कि मेरे मत का हेल्म हॉल्टज, एलिस तथा अन्य उपस्थित ध्वनि विज्ञानी भी इसका विरोध नहीं करेंगे। यदि मैं यह कहूँ कि भाषा विश्लेषण में कोई भी ध्वनि विज्ञानी आज तक ईसा पूर्व पाँचवी सदी के भारतीय ध्वनि विज्ञानियों से आगे नहीं बैठ सका है। व्याकरण के क्षेत्र में, मैं विद्वानों को चुनौती देता हूँ कि वे किसी भी भाषा में ऐसा कोई विद्वान बतावें, जिसने सभी तथ्यों का इतना गहन अध्ययन और वर्गीकरण किया हो जितना कि हम पाणिनीय के सूत्रों में देखते हैं।”

(लैक्चर्स ऑन दी ओरिजिन एण्ड ग्रोथ ऑफ लैंग्वेज, पृ. १४६)

अतः अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने पाणिनी और पतंजलि के व्याकरण ग्रंथों की अत्यंत प्रशंसा की है, और वेदभाष्य के लिए इनकी उपयोगिता मानी है।

इस संदर्भ में **प्रो. ए. एच. सायसी** ने मैक्समूलर की पुस्तक 'साइंस ऑफ लैंग्वेज' में लिखा है कि पाणिनी, विश्व की सभी भाषाओं और सभी कालों के व्याकरणों में सर्वोत्तम था:

"The native grammarians of India had at an early period analysed both the phonetic sounds and vocabulary of Sanskrit with astonishing precision, and drawn up a far more scientific system of grammar than the philologists of Alexandria or Roma had been able to attain. The Devnagri alphabet is a splendid monument of phonological accuracy, and long before the time of Sandia and Khayug, the Hindu "Vaiyakaranas" or grammarians, had not only discovered that roots are the ultimate elements of language but had traced all the words of Sanskrit to a limited number of roots. Their grammatical system and nomenclature of inductive reasoning, and though based on the phenomena of a single language, show a scientific insight into the nature of speech which has never been surpassed."

(Introduction to "The Science of Language", by Max, Mullar, Vol. 1, p. 38; Bharti, p. 83-84).

इसी प्रकार अन्य विद्वानों ने भी पाणिनी की **अष्टाध्यायी** के विषय में कहा:

(i) "The grammar of Panini is one of the most remarkable literary works that the world has ever seen, and no other country can produce any grammatical system at all comparable to it either for originality of plan or analytical subtlety. His Sutras are a perfect miracle of condensation."

(Indian Wisdom, p. 172; Bharti, p. 82).

**अर्थात्-** "पाणिनी का व्याकरण एक महान साहित्यिक रचनाओं में से एक है जिसे कि विश्व में किसी ने देखा है और कोई भी देश, इसकी तुलना में, कोई वैयाकरणीय व्यवस्था विकसित नहीं कर सका है, मौलिकता अथवा विश्लेषण दोनों की दृष्टि से उसके सूत्र संश्लेषण के पूर्ण चमत्कार हैं।"

(इंडियन विज्डम, पृ. १७२)

इसी प्रकार "सर डब्लू हंटर" भारत के इम्पीरियल गजट में लिखता है:

(ii) "The grammar of Panini stands supreme among the grammars of the world, alike for its precision of statement and for its thorough

analysis of the roots of the language and the formative principle of words. By applying an analytical terminology, it attains a sharp succinctness unrivalled in brevity but at times enigmatical. It arranges in logical harmony the whole phenomena which language presents and stands forth as one of the most splendid achievements of human invention and industry.”

(Sir W Hunter in Imperial Gazette of India p.214; Bharti. P. 82-83).

(iii) “We pass at once into the magnificent edifice which bears the name of the Panini as its architect, and which justly commands the wonder and admiration of every one who enters, and which by the very fact of its sufficing for all the phenomena which language and his profound penetration of the entire material of the language.”

(Indian Literature, p.216).

(iv) “Patanjali’s Mahabhashaya is one of the most wonderful grammatical works that the genius of any country has ever produced.”

(Indian Wisdom; Bharti, p.83).

(v) “In philology, the Hindus have, perhaps, excelled both the ancients(Greeks and Romans) and the moderns.”

(Mythology of the Hindus by W. Ward; Bharti, p. 83).

**अर्थात्-** "भारतीय वैयाकरणों ने अति प्राचीन काल में ही संस्कृत की शब्दावली और फोनोटीय (स्वनीय) ध्वनि का आश्चर्यजनक शुद्धता के साथ विश्लेषण किया है। इन्होंने अलेंकजेंड्रिया अथवा रोम के भाषा विज्ञानियों से कहीं अधिक वैज्ञानिकता के साथ वैयाकरणीय व्यवस्था दी है। देवनागरी के अक्षर एवं उनका क्रम ध्वनि विज्ञान की शुद्धता में एक महान स्मृति स्तम्भ है और जो सादिया और खय्यूग से बहुत पहले के हैं। इन हिन्दू वैयाकरणों ने न केवल यह खोजा है कि भाषा के मूल तत्व धातुएँ ही होती हैं बल्कि उन्होंने संस्कृत की उन सीमित सभी धातुओं को भी खोज निकाला, जिन पर संस्कृत के सभी शब्द आधारित हैं। उनकी व्याकरणीय और प्रेरक तर्क आधारित उच्चारण व्यवस्था, हालांकि एक ही भाषा पर आधारित है, वह एक वैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि वाणी के स्वभाव को प्रगट करती है, जिसका कभी अतिक्रमण नहीं किया जा सका है।"

(भूमिका, सांईस ऑफ लैंग्वेज, पृ. ३८)

मैक्समूलर के पाणिनीय व्याकरण के प्रति इतने उच्च विचार होते हुए भी, उसने इस महान वैयाकरण का अपने वेदभाष्य में प्रयोग केवल इसलिए नहीं किया क्योंकि वह अद्वितीय

विद्वान पाणिनी को समझ ही नहीं सका, और शायद कोई उसे समझा न सका या उसने जानबूझकर उसकी अनदेखी की।

अतः सच्चाई तो यही है कि मैक्समूलर ऋग्वेद के भाष्य करने के अनुबंध के लिए पूर्णतया अयोग्य था, जिसके लिए पाणिनी अष्टाध्यायी, पातंजलि महाभाष्य और यास्क के निरुक्त जैसे संस्कृत व्याकरण के ग्रंथों के गहन ज्ञान की आवश्यकता होती है। वास्तव में वह इन सबसे पूरी तरह अनजान था। इसीलिए वह भारत आकर दसा वर्षों तक वैदिक संस्कृत सीखना चाहता या जैसा कि उसने बुनसन को अपने पत्र में सुस्पष्ट लिखा था। मगर ब्रिटेन को राजनैतिक व धार्मिक कारणों से सच्चे वैदिक ज्ञान की आवश्यकता कम, और वेदों के विरुपीकरण द्वारा भारत के ईसाईकरण की तीव्र लालसा और आवश्यकता अधिक थी।



elibrary.thearyasamaj.org

## ०६. मैक्समूलर के वेद भाष्य पर मैकॉले का प्रभाव

### भारत के विषय में ब्रिटिशों की नीतियाँ

उस समय इंग्लैंड में, भारतीयों के प्रति तीन प्रकार की विचारधारा के वर्ग थे:

- (१) उपयोगितावादी,
- (२) ईसाई धर्मवादी और
- (३) उदारवादी।

मगर ये सभी वर्ग हिन्दुओं की आस्थाओं और रीतिरिवाजों को रुढ़िवादी और गतिहीन मानते थे। वे हिन्दू सभ्यता को भी मानने को तैयार नहीं थे। **जैम्स मिल** ने अपनी पुस्तक '**हिस्ट्री ऑफ ब्रिटिश इंडिया**' (१८१७) में इस विचार की भी आलोचना की कि 'हिन्दू कभी सभ्य थे' (चौधरी, पृ. १३२)। इसका मैकॉले पर व्यापक प्रभाव था। इस प्रचार में मैक्समूलर के सहायक रहे, **विलियम आर्चर** ने अपनी पुस्तक '**इंडिया एण्ड दी फ्यूचर**' (१९१७) में यह अस्वीकारा कि "यूरोपीय दृष्टि से भारत कभी सभ्य था" जिसका श्री अरबिन्द ने विरोध किया। (चौधरी, वही, पृ. १३३)

इस संदर्भ में चौधरी लिखते हैं:

"By the end of the nineteenth century the Englishmen had formulated his Thirty-nine Articles of dogma regarding Indians, and the first and second Articles were of course that they were all liars and the dishonest. These assumptions were communicated in advance to any Englishmen who was going to India as an administrator or in any other capacity. Generally speaking they were accepted even before the Englishman saw the country and its people. So the English came with a prefabricated hostility."

(ibid, p. 303).

यानी "उन्नीसवीं सदी के अन्त तक उन्होंने भारतीयों के बारे में नीति बना ली थी कि वे सब झूठे और बेईमान होते हैं। प्रत्येक अंग्रेज जो प्रशासक या अन्य किसी हैसियत से भारत आता था, उसके मन में ये धारणाएँ पहले ही से बैठा दी जाती थीं। सामान्यता किसी अंग्रेज के भारत आने और यहाँ के लोगों को मिलने से पहले ही ये बातें उसे स्वीकृत करा दी जाती थीं। इस प्रकार सभी अंग्रेज पूर्वकल्पित द्वेष भाव के साथ आते थे।"

(वही पृ. ३०३)

इस बात में लेशमात्र भी संदेह नहीं है कि ब्रिटिश कूटनीतिज्ञ **थॉमस बैबिंगटन मैकॉले** का न केवल मैक्समूलर के हिन्दू धर्म संबंधी साहित्य और वेदभाष्य पर बल्कि भारतीय शिक्षा पद्धति पर भी व्यापक प्रभाव पड़ा है। वह न केवल एक कट्टर ईसाई व ब्रिटिश कूटनीतिज्ञ था, बल्कि हिन्दू धर्म, संस्कृति एवं संस्कृत भाषा को हेय दृष्टि से देखता था।

१८०० ई. में जन्में **टी.बी. मैकॉले** के दादा **रेव. जोन मैकॉले** प्रेस्बिटेरियन चर्च के पादरी थे और उसके पिता जाचरी मैकॉले विलियम बिब्लिफोर्स के साथी थे, जो एवेंजिकल पार्टी (काल्फाम सम्प्रदाय) के सदस्य थे। इसीलिए मैकॉले की प्रारम्भिक शिक्षा प्रेस्बिटेरियन चर्च के कठोर अनुशासन में हुई थी। जिसके कारण मैकॉले में धार्मिक कट्टरता बचपन से ही कूट-कूट कर भरी थी। इसके अलावा राजनैतिक दृष्टि से वह लीड्स चुनाव क्षेत्र का प्रतिनिधि भी था। इतना ही नहीं, जब १८३३ में, ईस्ट इंडिया कम्पनी के चार्टर का पुनर्गठन किया गया तो, भारत के लिए, सुप्रीम काउंसिल के चौथे सदस्य का पद मैकॉले के लिए विशेष रूप से सुरक्षित रखा गया और उसे कानूनी सलाहकार नियुक्त किया गया। इसके लिए उसे दस हजार पाँड प्रतिवर्ष की विशाल राशि, वेतन के रूप में दी गई।

वह १० जून १८३४ को **मद्रास** पहुँचा और २ फरवरी १८३६ को इसने सभी भारतीय स्कूलों में अंग्रेजी को शिक्षा का माध्यम अपनाए जाने की सिफारिश कर दी तथा साथ ही इन्हें न मानने की स्थिति में उसने काउंसिल की सदस्यता से त्यागपत्र देने की धमकी भी दी। अन्त में मार्च १८३६ से अंग्रेजी को, शिक्षा के माध्यम के रूप में, **भारतीय शिक्षा पद्धति** पर बड़ी निरंकुशता के साथ थोप दिया गया।

अपने निर्णय के समर्थन और संस्कृत भाषा के विरोध में उसने २ फरवरी १८३६ की कार्यवाही में लिखा:

"I have no knowledge of either Sanskrit or Arabic. But I have done what I could to form a correct estimate of their value. I have read translations of the most celebrated Arabic and Sanskrit works. I have conversed both here and at home with men distinguished by their

proficiency in the Eastern tongues. I am quite ready to take the Oriental learning at the valuation of the Orientalists themselves. I have never found one among them who could deny that a single shelf of a good European library was worth the whole native literature of India and Arabia.

The intrinsic superiority of Western Literature is, indeed, fully admitted by those members of Committee who support the Oriental plan of education. ..It is, I believe, no exaggeration to say that all the historical information which has been collected from all the books written in the Sanskrit Language is less valuable than what may be found in the most paltry abridgements used at preparatory schools in England. In every branch of physical or moral philosophy the relative position of the two nations is nearly the same."

(Chaudhuri, p. 133).

**अर्थात्-** "मुझे संस्कृत अथवा अरबी भाषा का कोई ज्ञान नहीं है, लेकिन मैंने उनका सही मूल्यांकन करने के लिए जो कुछ कर सकता था, किया है। मैंने अरबी और संस्कृत की सबसे विख्यात रचनाओं के अनुवादों को पढ़ा है। मैंने इन पूर्वी भाषाओं के भारत तथा ब्रिटेन दोनों के सुविख्यात विद्वानों से बात की है। मैं स्वयं प्राच्यविद्वानों के मूल्यांकन के आधार पर प्राचीन भाषाओं की शिक्षा लागू करने के लिए बिल्कुल तैयार हूँ। मगर मैंने इन विद्वानों में से किसी एक को भी नहीं पाया जो इस बात को नकारता हो कि एक अच्छी यूरोपीय लायब्रेरी की एक शैल्फ, समस्त भारत और अरेबिया के साहित्य के बराबर है।"

"पश्चिमी साहित्य की श्रेष्ठता को, वास्तव में उन सदस्यों की कमेटी ने पूरी तरह स्वीकारा है, जो कि प्राच्य भाषाओं की शिक्षा योजना की पुष्टि करते हैं। मैं मानतू हूँ कि इस कथन में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि ऐतिहासिक सामग्री जो कि संस्कृत की समस्त पुस्तकों में से इकट्ठी की गई है, वह उसके बराबर नहीं है जो कि इंग्लैंड के प्राथमिक स्कूलों में प्रयोग की जाने वाली सामान्य पुस्तकों में है। शिक्षा के समस्त भौतिक और नैतिक दर्शन में भी दोनों देशों की तुलनात्मक स्थिति लगभग वैसी है।"

(चौधरी, पृ. १३३)

मैकाले का भारत के प्राचीन संस्कृत साहित्य के प्रति इतना घृणात्मक भाव होना अस्वाभाविक नहीं है। क्योंकि पराधीनों की संस्कृति विजेताओं से श्रेष्ठतर कैसे हो सकती है? विशेषकर जब उन्हें उन पर राज करना हो? अतः उसने आगे कहा:



".....I have traveled across the length and breadth of India and I have not seen one person who is a beggar, who is a thief. Such wealth I have seen in this country, such high moral values, people of such caliber, that I do not think we would ever conquer this country unless we break the very backbone of this nation which is her spiritual and cultural heritage and therefore. I propose that we replace the old and ancient education system, her culture, for if the Indians think that all that is foreign, and English is good and greater than their own, they will lose their own self esteem their nature culture and they will become what we want them a truly dominated nation."

(2 Feb. 1835 Proc. On education).

**अर्थात्-** "मैंने सारे भारत का भ्रमण किया है और मैंने एक भी चोर और भिखारी आदमी नहीं पाया है। मैंने इस देश में इतनी सम्पदा देखी है तथा इतने उच्च नैतिक आदर्श देखे हैं और इतने उच्च योग्यता वाले लोग देखे हैं कि मैं नहीं समझता कि हम कभी इसे जीत पाएँगे, जब तक कि इसके मूल आधार को ही नष्ट न कर दें, जो कि इस देश की आध्यात्मिक और सांस्कृतिक धरोहर है; और इसीलिए मैं प्रस्तावित करता हूँ कि हम उसकी प्राचीन और पुरानी शिक्षा पद्धति और उसकी संस्कृति को बदल दें। क्यों यदि भारतीय यह सोचने लगे कि जो कुछ विदेशी और अंग्रेजी है, वह उनकी अपनी संस्कृति से अच्छा और उत्तमतर है, तो वे अपना स्वाभिमान एवं भारतीय संस्कृति को खो देंगे और वे वैसे ही हो जाएंगे जैसा कि हम चाहते हैं, पूरी तरह एक पराधीन राष्ट्र।"

(२ फरवरी १८३५, प्रोसी, शिक्षा)

उसने सच्चाई से स्वीकारा भी कि भारत में अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों की स्थापना का उद्देश्य वास्तव में, ऊँची जातियों के हिन्दुओं को ईसाईयत में धर्मान्तरित करने का था और ऐसा ही उसने कलकत्ता से, १२ अक्टूबर १८३६ को, अपने पिता को एक पत्र में लिखा भी था:

"Our English schools are flourishing wonderfully. We find it difficult, indeed, in some places impossible to provide instructions for all who want it. At the single town of Hoogly fourteen hundred boys are learning English. The effect of this education on the Hindoos is prodigious. No Hindoos, who has received an English education, ever remains sincerely attached in his religion. Some continue to profess it as a matter of policy; but many profess themselves pure Deists, and some embrace Christianity. It is my firm belief that if, our plans of education are followed up, there will

not be a single Idolater among the respectable classes in Bengal thirty years hence. And this will be effected without any efforts to proselytise; without the smallest interference with religious liberty; merely by the natural operation of knowledge and reflection. I heartily rejoice in the prospects..."

Within half a year after the time when you read this we shall be making arrangements for our return. I feel as if I never could be unhappy in my own country; as if so exist on English ground and among English people, seeing the old familiar sights and hearing the sound of my mother tongue, would be enough for me. Ever Yours Most Affectionately, T.B. Macaulay."

(Life and Letters of Lord Macaulay. Pp. 329-30; Bharti, pp. 46-47).

**अर्थात्-** "हमारे अंग्रेजी स्कूल आश्चर्यजनक गति से बढ़ रहे हैं। निसंदेह कुछ जगहों पर ऐसा होना मुश्किल हो रहा है, कुछ जगहों पर हमें उन सबको शिक्षा दे पाना असंभव हो रहा है जो कि ऐसा चाहते हैं। हुगली शहर में चौदह सौ लड़के अंग्रेजी सीख रहे हैं। इस शिक्षा का हिन्दुओं पर आश्चर्यजनक प्रभाव पड़ रहा है। कोई भी हिन्दू जिसने अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा प्राप्त कर ली है, वह निष्ठापूर्वक हिन्दू धर्म से जुड़ा हुआ नहीं रहता है। कुछ एक, औपचारिकता के रूप में, नाम मात्र को हिन्दू धर्म से जुड़े दिखाई देते हैं। लेकिन अनेक स्वयं को 'शुद्ध देववादी' कहते हैं तथा कुछ ईसाईमत अपना लेते हैं। यह मेरा पूरा विश्वास है यदि हमारी शिक्षा की योजनाएँ चलती रहीं तो तीस साल बाद बंगाल के सम्भ्रान्त परिवारों में एक भी मूर्तिपूजक नहीं रहेगा और ऐसा किसी प्रकार के प्रचार एवं धर्मान्तरण किए बगैर हो सकेगा। किसी धार्मिक आजादी में न्यूनतम हस्तक्षेप न करते हुए ऐसा हो सकेगा। ऐसा स्वाभाविक ज्ञानदेने की प्रक्रिया द्वारा हो जाएगा। मैं हृदय से उस योजना के परिणामों से प्रसन्न हूँ।"

"जिस समय आप इसे पढ़ते हैं, उसके आधे साल के भीतर हम अपनी वापसी की व्यवस्था कर रहे होंगे। मुझे ऐसा लगता है जैसे मैं कभी अपने देश में दुखी नहीं हो सकता; जैसे कि अंग्रेजी मैदान में और अंग्रेजी लोगों के बीच में, पुराने परिचित स्थलों को देखने और मेरी मातृभाषा की आवाज़ सुनने के लिए, मेरे लिए पर्याप्त होगा। आपका अत्यन्त प्रिय टी.बी. मैकॉले!"

(लार्ड मैकॉले की जीवनी और पत्र, पृ. ३२९; भारती पृ. ४६-४७)

मैकॉले के विचारों की पुष्टि करते हुए "पादरी क्लिफोर्ड" ने ईमानदारी से यह स्वीकारा

है-

“Every Christian missionary will claim that the mission school in India has a definite purpose. He may be specific and say that the function of mission schools in India is to lead boys and girls to Jesus Christ.”

(Christianity in a Changing India, p. 147).

**अर्थात्-** "प्रत्येक ईसाई मिशनरी यह दावा करेगा कि भारत में मिशन स्कूलों का एक निश्चित उद्देश्य है। वह विशेषकर यह भी कह सकता है कि भारत में मिशन स्कूलों का कार्य लड़के और लड़कियों को जीजस क्राइस्ट की ओर ले जाने का है।"

(क्रिश्चियनिटी इन चेंजिंग इंडिया, पृ. १४७)

उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भ से ही ब्रिटिश शासक सभी राजनैतिक, प्रशासनिक व कूटनीतिक तरीकों से भारत में एक महान ग्रेट ब्रिटेन बनाने की अत्यधिक कोशिश कर रहे थे। जबकि भारतीय सामाजिक व धार्मिक नेता जैसे राजाराम मोहनराय, केशवचन्द्र सेन, स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द आदि के नेतृत्व में अनेक क्रान्तिकारी युवक भारत के विभिन्न भागों में ब्रिटिश राज के विरुद्ध संघर्ष कर रहे थे। इस आंदोलन को कुचलने के लिए ब्रिटिश शासन न केवल हथियारों का ही प्रयोग कर रहे थे, बल्कि सभी प्रकार की निम्नस्तर की कूटनीति अपना रहे थे। जैसे 'बांटो और राज करो', 'मिशनरियों द्वारा हिन्दुओं का धर्मान्तरण', 'अंग्रेजी शिक्षा माध्यम द्वारा हिन्दू धर्म एवं संस्कृति के प्रति घृणा पैदा करना', 'हिन्दूधर्म शास्त्रों को विरूपित करना, उनके प्रति घृणा उत्पन्न करने वाला साहित्य रचना' आदि।

यह टी.बी. मैकॉले ही था, जो भारत आने से पहले ही, ब्रिटिश पार्लियामेंट में हिन्दुओं के धर्म और संस्कृति को नष्ट-भ्रष्ट करने के लिए भारतीय स्कूलों में अंग्रेजी शिक्षा माध्यम के महत्व और उसकी उपादेयता पर बल दे रहा था। यह मैकॉले ही था जिसने मैक्समूलर पर १८५५ में हिन्दू धर्म शास्त्रों के विकृत अनुवाद कर उन्हें अपभ्रष्ट करने की नीति अपनाने पर दबाव डाला था और उसे ऐसा करने के लिए विवश किया था।

मैक्समूलर की ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में ऋग्वेद का अंग्रेजी में भाष्य करने के लिए (१८४७) में नियुक्ति हो जाने के बाद, उसने इंग्लैंड में भारतीय भाषाओं के अध्ययन-अध्यापन की आवश्यकता पर बार-बार बल दिया। जो कि उस समय के सहायक मंत्री (खजाना) सर चार्ल्स एडवर्ड ट्रेविलियन (१८०७-१८६६) को लिखे पत्र से प्रगट होता है-

“It is undoubtedly high time that something should be done in encourage the study of Oriental languages in England. At the very outset of this war, it has been felt how much this branch of studies---in emergencies like the present so requisite, has been neglected in the system of our education. In all other countries which have any political,

commercial, or religious connections with the East, provision has been made by the Government, or otherwise, to encourage youngmen to devote themselves to this branch of studies. Russia has always been a most liberal patron of Oriental philology. In the Academy of St. Petersburg there is a Chair for every branch of Oriental literature. The French Government has founded a school. At Vinna, there is an Oriental Seminary, Russia finds it expedient to give encouragement to young Oriental scholars, employed afterwards with advantages as consuls and interpreters. In England alone, where the most vital interests are involved in a free intercourse with the East, hardly anything is done to foster Oriental studies."

(LLMM, Vol., p. 119)

**अर्थात्**-“यह निस्संदेह उच्च समय है कि इंग्लैंड में ओरिएंटल भाषाओं के अध्ययन को प्रोत्साहित करने के लिए कुछ किया जाना चाहिए। इस युद्ध की शुरुआत में, यह महसूस किया गया है कि अध्ययन की यह शाखा कितनी है! वर्तमान में इतनी आवश्यकताओं जैसी आपात स्थितियों में, हमारी शिक्षा की प्रणाली में उपेक्षा की गई है। अन्य सभी देशों में जिनका पूर्व के साथ कोई भी राजनीतिक, वाणिज्यिक या धार्मिक संबंध है, सरकार द्वारा प्रावधान किया गया है, या अन्यथा, युवाओं को पढ़ाई की इस शाखा के लिए समर्पित करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। रूस हमेशा से ओरिएंटल दार्शनिक का सबसे उदार संरक्षक रहा है। सेंट पीटर्सबर्ग की अकादमी में ओरिएंटल साहित्य की हर शाखा के लिए एक कुर्सी है। फ्रांसीसी सरकार ने एक स्कूल की स्थापना की है। विन्ना में, एक ओरिएंटल सेमिनरी है, रूस में युवा ओरिएंटल विद्वानों को प्रोत्साहन देना समीचीन लगता है, बाद में फायदे और दुभाषियों के रूप में फायदे के साथ नियोजित किया गया। अकेले इंग्लैंड में, जहां पूर्व के साथ सबसे महत्वपूर्ण हित एक मुक्त मेलजोल में शामिल हैं, शायद ही ओरिएंटल अध्ययनों को तेज करने के लिए कुछ भी किया जाता है।”

**(जीवनी एवं पत्र, खं. १ पृ. ११९)।**

इसकी पुष्टि में उसने रूस, फ्रांस, स्विटजरलैंड, जर्मनी आदि देशों में संस्कृत भाषाओं के अध्ययन व्यवस्था होने के उदाहरण दिए। इसी बात को उसने १८५१ में मैकॉले से मिलते वक्त कही और १८५५ में फिर इसे दोहराया। लेकिन इसी बीच जून १८५५ को मैक्समूलर को भारत में सिविल सेवाओं के लिए प्रत्याशियों की परीक्षाओं के लिए स्थापित कमीशन का

सदस्य और एक परीक्षक भी बना दिया गया था। इससे मैकॉले निरुत्साहित हुआ था। दिसम्बर १८५५ को अलबेनी में मैक्समूलर- मैकाले भेंट के बारे में भारती लिखते हैं:

“Macaulay first pretended to discuss with Max Muller the new regulations for Indian Civil Service, so far as they related to the teaching of Oriental subjects and languages”. Max Muller who still suffered for his youthful zeal and carried at least within his heart a genuine love for Sanskrit had gone to meet Macaulay enthusiastically prepared and fully armed with all the arguments that he could command to plead the case for Oriental languages. But little did he realize that in Macaulay, he was going to face a mulish Christian and a rabid enemy of Oriental languages and literature. Nor perhaps was he sufficiently conscious of the historical fact, and its Christian background, that it was Macaulay who had imposed on the Indian people English language with the covert purpose of language being used as a vehicle for converting people to Christianity.”

(Bharti, p. 35)

**अर्थात्-** "मैकॉले ने प्रारम्भ में मैक्समूलर से भारत के लिए इंडियन सिविल सर्विस के नए नियमों, जहाँ तक कि प्राच्य भाषाओं और विषयों की शिक्षा से संबंधित विषयों पर विचार-विनिमय करने का बहाना किया। मैक्समूलर, जो कि युवा होने के कारण उत्साह पूर्ण था और कम से कम संस्कृत भाषा के लिए उसके मन में सच्ची निष्ठा और प्यार था, एवं उसके लिए सब प्रकार की सामग्री एवं तर्कों सहित तैयार होकर मैकॉले से मिलने गया था। ताकि वह प्राच्य भाषाओं के पक्ष को बलपूर्वक प्रस्तुत कर सके। लेकिन उसने यह जरा भी नहीं सोचा होगा कि उसका पाला एक जिद्दी ईसाई और प्राच्य भाषाओं और उनके साहित्य के कट्टर विरोधी से पड़ा है। शायद वह न इस ऐतिहासिक सत्य से पूर्ण रूप से परिचित था कि वह मैकाले ही था जिसने अंग्रेजी को शिक्षा का माध्यम के रूप में भारतीय लोगों पर इसलिए थोप दिया ताकि भारतीयों को अंग्रेजी भाषा के माध्यम से हिन्दू धर्मग्रन्थों और संस्कृति को हेय बताकर उन्हें ईसाईयत में धर्मान्तरित किया जा सके।"

(भारती, पृ. ३५)

मैक्समूलर का दिसम्बर १८५५ में मैकॉले से मिलने संबंधी विवरण और उसके प्रभाव को उसने १८९८ में प्रकाशित अपनी पुस्तक '**लैंग सायने**' में दिया है। भारती लिखते हैं कि इस मीटिंग में मैकॉले न केवल अधिकांश समय तक बोलता ही रहा बल्कि अन्त में उसने मैक्समूलर को इस ढंग से बिदा किया जो कि बड़ा बाध्यकारी भी था और इस बात की और भी

ज्यादा सम्भावना है कि मैकॉले ने संस्कृत प्रेमी जर्मन विद्वान मैक्समूलर को अपने स्वाभाविक तिरस्कार पूर्ण हठ धर्मिता से उसके साथ व्यवहार किया हो। अपनी माँ को लिखे पत्र में मैक्समूलर ने इस बदनाम साक्षात्कार का वर्णन किया है। उसने दुःखित मन से लिखा:

“Macaulay, and I had a long conversation with him on the teaching necessary for the young men who are sent out to India. He is very clear headed, and extraordinarily eloquent. ....I went back to Oxford a sadder, and I hope, a wiser man.”

(LLMM, Vol. 1, p. 162; Bharti, pp. 35-36).

“इस बार मैं लंदन में मैकाले से मिला और उसके साथ इस विषय पर लम्बी बातचीत हुई कि भारत भेजे जाने वाले युवकों को क्या पढ़ाया जाने की आवश्यकता है। वह एक बहुत ही चालाक मस्तिष्क वाला वाक्पटु व्यक्ति है। ....मैं और अधिक दुःखी होकर ऑक्सफोर्ड वापिस लौटा, और शायद, अधिक समझदार मनुष्य बनकर”!

(जी.प.खं. १, पृ. १६२)

मैकॉले से मिलने के बाद अपनी माँ को लिखे पत्र से अपमानित मैक्समूलर का आक्रोश साफ नजर आता है। प्रतीत होता है कि मैक्समूलर को यह बता दिया गया होगा कि भारतीय विद्याओं के अध्ययन से भारत में ईसाईयत के प्रचार को क्षति हो सकती है। वह अधिक 'समझदार' हो गया क्योंकि शायद उसे सबसे पहली बार पता चला होगा कि हिन्दूधर्म शास्त्रों का भाष्य या उन पर कुछ लिखते समय इस बात का ध्यान रखना है कि किस प्रकार ब्रिटेन के धार्मिक-राजनैतिक हितों की रक्षा हो सकती है। मैकॉले के ऐसे परामर्श मानने पर ही उसके सांसारिक आर्थिक हितों की भी पूर्ति हो सकेगी। मैकॉले ने एक ही बार में उसकी समस्त अद्वितीय योग्यता और लेखनी की स्वतंत्रता की धज्जियाँ उखेद दीं। इस अवसर से पहले मैक्समूलर भले ही संस्कृत और भाषा विज्ञान का शुभ चिन्तक रहा हो जैसा कि उसने ईसाई मिशन के सामने बतलाया था, मगर मैकॉले से मिलने के बाद वह 'शोकग्रस्त था'। क्योंकि अब उसकी आत्मा की स्वतंत्रता समाप्त कर दी गई थी। जो कि मिशनरी हितों के लिए गिरवी रख दी गई थी और वह इस दयनीय स्थिति से पूरी तरह अवगत था। जिससे बिना नुकसान उठाए निकलने का अब उसके पास अन्य कोई रास्ता नहीं बचा था। वास्तव में मैक्समूलर को ईस्ट इंडिया कम्पनी से लाभ कम और हानि अधिक उठानी पड़ी। क्योंकि थोड़े से आर्थिक लाभ के बदले उसे आजीवन अपनी आत्मा की आवाज को दबाकर जीना और लिखना पड़ा।

कुछ भी हो,, मगर सच जरूर है कि मैकॉले के १८५५ के साक्षात्कार ने मैक्समूलर की सोच और उसके युवा मस्तिष्क को अत्यधिक प्रभावित किया। लूथरन ईसाई होने के कारण

मैक्समूलर भी मैकाले से कम कट्टर ईसाई नहीं था। मगर मैकॉले उस कौम का अंग था जिसका भारत पर राज था। वह धर्म के मामलों में मैक्समूलर से कम सहिष्णु और अधिक हठधर्मी था। इसी का परिणाम था कि मैक्समूलर के १८५५ के बाद के साहित्य में महान परिवर्तन हुआ। उसमें बाईबिल, जीजस और ईसाईयत की प्रशंसा की प्रधानता दिखाई देती है। यदि मैक्समूलर दिसम्बर १८५५ में मैकॉले से न मिला होता तो सम्भव है कि वह हिन्दू धर्म का इतना कट्टर विरोधी न होता।

हालांकि ऋग्वेद का भाष्य १८४९ से प्रकाशित होना प्रारंभ हो गया था, लेकिन उसका भारत संबंधी अधिकांश साहित्य १८५५ के बाद का ही है। जिस पर मैकॉले की छाप साफ नजर आती है। वह एक सैक्यूलर पादरी का लबादा ओढ़ने पर भी मैकाले-प्रभाव एवं ईसाई-कट्टरता की छाप से अपने का बचा न सका।

मैक्समूलर का ईसाईयत से मोह, और वेदों से घृणा, ऑक्सफोर्ड आने के ३९ महीने बाद **बुनसन** को लिखे पत्र से साफ नजर आती है। वह लिखता है:

“Your Excellency, ...With regard to Empson's and Dr. Wilson's letter, it is difficult to advise. I have no doubt whatever, that something can be written about the Veda which would reach even the dullest ears. Whether Dr. Wilson can undertake that task is another question. You know the dry hard shell in which the Veda is presented to us, and which seems still harder and more wooden in the English translation. Nevertheless I of course shall be glad if the Rigveda is dealt with in the Edinburg Review, and if Wilson would write from the standpoint of a missionary, and would show how the knowledge and bringing into light of the Veda would upset the whole existing system of Indian theology, it might become of the real interest.”

(LLMM. Vol. 1 p. 117).

**अर्थात्**- "श्रीमान्- डा. विल्सन और एम्सन के पत्रों के संबंध में परामर्श देना कठिन है। लेकिन इसमें मुझे जरा भी सन्देह नहीं है कि वेद के बारे में अवश्य कुछ लिखा जा सकता है जो कि बहरे कानों तक को भी सुनाई देगा। यह एक दूसरी बात है कि डा. विल्सन स्वयं ही यह काम करें। आप जानते हो कि हमें वेद, सूखे और कड़े खोल के रूप में मिला है और जिसका अंग्रेजी भाषा में अनुवाद करना और भी कठिन है। फिर भी मैं वस्तुतः प्रसन्न होऊँगा कि यदि ऋग्वेद पर एक लेख को 'ईडिनबरा रिव्यू' में प्रकाशित किया जाए और प्रो. विल्सन ईसाई मिशनरी दृष्टिकोण से लिखें और दिखावें कि यह ज्ञान और वेद को प्रकाश में लाने से भारतीय

धर्म शास्त्र की सम्पूर्ण व्यवस्था नष्ट-भ्रष्ट हो जाएगी, तो वास्तविक दिलचस्पी का विषय होगा।"

(जी.प., खं १ पृ. ११७)



elibrary.thearyasamaj.org



## ०७. मैक्समूलर द्वारा वेदों का विकृतीकरण क्यों?

इस प्रश्न का कुछ उत्तर तो ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग में **बोडेन चेयर** की स्थापना के उद्देश्य से ही सुस्पष्ट है। जिसके लिए १८४७ में मैक्समूलर की ऋग्वेद के सम्पादन एवं अंग्रेजी भाष्य करने के लिए नियुक्ति की गई थी। इसी नीति के अन्तर्गत उसने १८४९ और १८५४ में ऋग्वेद के दो खंडों का प्रकाशन भी किया। परन्तु १८५५ में मैकॉले से मिलने के बाद उसकी हिन्दू धर्म शास्त्रों के प्रति चिन्तन की दिशा ही बदल गई। अब उसने वेदों के अतिरिक्त अन्य हिन्दू धर्म शास्त्रों की आलोचना की ओर विशेष ध्यान दिया। तथा संस्कृत को मृत एवं हेय भाषा सिद्ध करने का प्रयास किया। इसके ही फलस्वरूप उसने १८५६ में 'ऐसेज ऑन कम्परेटिव मायथोलॉजी', १९५९ में 'दी हिस्ट्री ऑफ ऐशिएन्ट संस्कृत लिटरेचर', और १८६१ और १८६४ में 'साइंस ऑफ लैंग्वेजिज' (दो खंडों में) आदि ग्रंथों की रचना की। (तालिका- १)।

मैक्समूलर ने ऋग्वेद के भाष्यकार के रूप में प्रारम्भिक लक्षणों को प्रगट करना शुरू कर दिया था। इसीलिए वह चाहता था कि बोडेन-चेयर पर विराजमान प्रो. विलसन वेदों पर ईसाई दृष्टिकोण से कुछ लिखें, ताकि उनके विचारों को वह अपने लिए मार्ग दर्शक के रूप में प्रयोग कर सकें।

### बोडेन चेयर पाने का प्रयास

मैक्समूलर ने प्रारम्भ से ही लगातार बोडेन चेयर के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए जी जान से परिश्रम किया। उसने इस काल खण्ड (१८४७-१८६०) में अपने आप को ईसाईयत के कुसेडर (धर्म योद्धा) और हिन्दू धर्म के विध्वंसक के रूप में पूरी तरह समर्पित कर लिया था और जब १८६० में बोडेन चेयर पर आसीन प्रोफेसर डा. विलसन की मृत्यु हो गई तो उसने बोडेन चेयर के पद को अथियाने का हर सम्भव प्रयास किया। भारत कि मिशनरियों ने उसकी

ईसाई हितकारी सेवाओं की भूरि-भूरिप्रशंसा करते हुए उसे बोडेन चेयर के लिए अपना मनचाहा सर्वोत्तम प्रत्याशी माना, जैसा कि उनके नीचे दिए पत्रों से सुस्पष्ट है।

कलकत्ता के बिशप श्री काटन ने लिखा:-

Revenswood,

Simla,

July 13, 1860,

My dear Sir,

When I heard of the great loss which Sanskrit literature had sustained by the death of Professor Wilson, my thoughts naturally turned to you as his obvious successor, and it will give me great pleasure to hear that the University make an election which is certainly expected and will be approved by every one to whom I have spoken on the subject in this country.”

“I feel considerable interest in the matter, because I am sure that it is of the greatest importance for our missionaries to understand Sanskrit, to study the philosophy and Sacred books of the Hindus, and to be able to meet the Pundits on their own ground.”

“Among the means to this great end, none can be more important than your edition and Professor Wilson’s translation of the Rigveda. (Max Muller did the translation on Sayana’s basis which was published in Wilson’s name as he was the Librarian and Incharge of Publications). It would be most fitting in my opinion for the great Christian University to place in its Sanskrit Chair the scholar who has made the Sanskrit scriptures accessible to the Christian missionary.”

“...You are at liberty to make any use that you please of this letter.” “With every wish for your success. I remain, my dear,

Your’s very sincerely.

**(G.E.L. Cotton)”**.

(LLMM, Vol. 1, pp. 236-37).

रोविन्सवुड,

शिमला,

जुलाई १३, १८६०;

"प्रियवर महोदय!

जब मुझे प्रोफेसर विल्सन, जिसने संस्कृत रचना को प्रगति दी, के निधन का बड़ा दुःखद समाचार मिला, तो मेरा ध्यान, उनके स्वाभाविक उत्तराधिकारी के रूप में, अपने आप ही आपकी तरफ गया और मेरे लिए यह अति प्रसन्नता का विषय होगा कि विश्वविद्यालय यह चुनाव, जो कि निश्चय ही होगा, उस व्यक्ति के पक्ष में हो जिसके बारे में मैंने इस देश (भारत) में सबको बतलाया है।"

"मैं इस विषय में काफी दिलचस्पी रखता हूँ। क्योंकि मुझे आशा है यह हमारे मिशनरियों को संस्कृत जानने और हिन्दुओं के धर्मशास्त्रों तथा दर्शनों को समझने और हिन्दू पंडितों से उनकी ही धरती पर उन्हें चुनौती देने के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है।"

"इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अनेक साधनों में से डा. विल्सन के मार्ग दर्शन में आपके द्वारा ऋग्वेद का सम्पादन एवं भाष्य से ज्यादा अन्य कोई कार्य उपयोगी न हो सकेगा। मेरे विचार से यह सबसे उचित होगा कि इस महान ईसाई विश्वविद्यालय (ऑक्सफोर्ड) के लिए (बोडेन की) संस्कृत-चेयर उस विद्वान को दी जाए, जिसने संस्कृत धर्मशास्त्रों को ईसाई मिशनरियों के लिए सुग्राह्य बनाया है।"

आप मेरे इस पत्र को जैसे चाहें उस कार्य के लिए प्रयोग कर लें। आपकी सफलता की कामनाओं सहित-

आपका प्रियः

**जी. ई. एल. काटन**

**(जी.प.खं. १, पृ. २३६-२३७)।**

इसी प्रकार ऑक्सफोर्ड आन्दोलन से जुड़े एक दूसरे सक्रिय सदस्य और मिशनरी **डॉ. ई. बी. पूसी** ने मैक्समूलर को लिखा:

"Christ Church,

June 2, 1860,

My Dear Professor, On the first election to the Sanskrit Chair, you will have heard that we were divided before two great names. Professor Wilson, whose first rate Sanskrit knowledge was in the mouth of every one, and Dr. Mill who, many of us thought, might fulfil the object of the founder better by giving to the Professorship a direct missionary turn. The same thought would naturally recur to us now, and I have kept myself in suspense since our sudden loss of Professor Wilson.

My first impression, however, is my abiding conviction, that we should be best promoting the intentions of the founder, by electing yourself, who have already done so much to make us fully acquainted with the religious system of those whom we wish to win to the Gospel. ...I cannot but think that your lecturers on the Vedas are the greatest fits which have been bestowed on those who would win to Christianity the subtle and thoughtful minds of the cultivated Indians. We owe you every much for the past, and we shall ourselves gain greatly by placing you in a position in which you can give our undivided attention to those labours by which we have already so much profited.

“.....Your work will form a new era in the efforts for the conversion of India, and Oxford will have reason to be thankful for that by giving you a home it will have facilitated a work of such primary and lasting importance for the conversation of India and which by enabling us to compare that early false religion with the true, illustrates the more than blessedness of what we enjoy.

Your very faithfully,  
E.B. Pusey.”

(LLMM Vol. 1 pp. 237-38).

क्राइस्ट चर्च,

जून २, १८६०,

मेरे प्रिय प्रोफेसर, संस्कृत (बोडेन) चेयर के लिए सबसे पहले चुनाव में तुमने सुना होगा कि हम दो बड़े नामों के बीच में विभाजित थे। प्रोफेसर विल्सन, जिसके संस्कृत ज्ञान के प्रति आदर के कारण सभी के मुँह पर उन्हीं का नाम था, और दूसरे थे डॉ. मिल, जिनके बारे में हमसे कुछ यह सोचते थे कि एक मिशनरी को सीधे प्रोफेसर का पद देने से वे चेयर के संस्थापक (बोडेन) के उद्देश्य की पूर्ति अधिक अच्छी तरह कर सकेंगे और निश्चय ही यही विचार अब हमारे मन में फिर से आएगा; और डॉ. विल्सन की अचानक मृत्यु के बाद से ही मैं बड़ी दुविधा में हूँ।

फिर भी मेरी प्राथमिकता यह है कि इस पद के लिए आपको चुनने से हम चेयर (बोडेन चेयर) के संस्थापक की भावनाओं का सबसे अधिक आदर कर सकेंगे, क्योंकि आपने हम सबको उनकी (हिन्दुओं की) धर्म व्यवस्था से पूरी तरह परिचित कराया है, जिन तक हम गोस्पिलों (बाइबिल) को ले जाना चाहते हैं। मैं इसके अलावा और कुछ नहीं सोच सकता कि

आपके वेदों पर भाषण उन लोगों के लिए सबसे अधिक उपयोगी होंगे, जो विचारवान और तीव्र बुद्धि वाले सभ्य भारतीयों को ईसाईयत के लिए जीतने में सक्रिय हैं। हम सब आपके पिछले कार्यों के प्रति आभारी हैं और हम सब आपको इस सम्माननीय पद पर प्रतिष्ठित करके और अधिक लाभान्वित होंगे। तब आप हमारा सम्पूर्ण ध्यान उन प्रयासों की तरफ और अधिक खींच सकेंगे, जिससे हम पहले ही काफी लाभान्वित हुए हैं।"

"आपका कार्य भारतीयों को ईसाई बनाने के प्रयत्नों में नवयुग लाने वाला होगा और ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय को अपने को धन्य समझने का अवसर होगा। जिसने आपको आश्रय देकर भारत को ईसाई बनाने के प्राथमिक और दूरगामी प्रभाव के महत्वपूर्ण कार्य को सुगम बना दिया। साथ ही यह आपका कार्य हमें तुलनात्मक दृष्टि से समर्थ बनाएगा कि हम पुराने (हिन्दू) धर्म को सच्चे (ईसाई) धर्म के साथ तुलना का आनन्द उठाएँ। आपका यह कार्य उससे भी बड़ा और आशीषपूर्ण है जो कि हमें प्राप्त है।

आपका

ई.बी. पूसी

(LLMM Vol. 1 pp. 237-38).

उपरोक्त दोनों पत्रों से सुस्पष्ट और सच्चाई के साथ प्रमाणित होता है कि मैक्समूलर का साहित्य भारत को ईसाईयत में धर्मान्तरित करने के कार्य को सुगम बनाएगा और यदि वह विल्सन का उत्तराधिकारी चुना जाता है। तो इससे कर्नल बाडेन के उद्देश्य की पूर्ति और अधिक प्रभावी ढंग से किए जाने की सम्भावना हो सकेगी। इन पत्रों से यह भी प्रमाणित होता है कि डॉ. मैक्समूलर अन्य किसी संस्कृत के विद्वान की अपेक्षा भारत में गोस्पिल (बाइबिल) के हित में भारतीयों के पवित्र ग्रंथों को उन तक पहुँचा कर पहले ही अधिक कार्य कर चुका है और उसके चुनाव से उसे और अधिक कार्य करने का अवसर मिलेगा। वह वर्तमान संस्कृत विद्वानों एवं बोडेन चेयर के प्रत्याशियों में सर्वोत्तम है। लेकिन प्रतीत होता है कि मैक्समूलर को पूर्वानुमान था कि चुनाव का परिणाम उसके विरुद्ध होगा, जैसा कि उसने अपनी माँ को लिखे पत्र से प्रगट होता है :-

"मेरी प्यारी माँ, मेरा काफी समय चुनाव कार्य में लग जाता है और कभी-कभी लगता है कि मैं चुनाव की न सोचता। इसमें मेरा दिसम्बर (१८६०) तक का समय लग जाएगा और यदि मैं सफल नहीं होता हूँ तो बड़ा दुःखी होऊँगा। जरा उन चार हजार चयनकर्ताओं की सोचों, जो कि सारे इंग्लैंड में बिखरे हुए हैं और प्रत्येक को पत्र भी लिखा जाना चाहिए।"

(जी.प. खं. १, पृ. २३८)

अन्त में मैक्समूलर २७३ (८३३/६१०) मतों से चुनाव हार गया। मुख्यतया इसलिए कि वह एक गैर-ब्रिटिश था। इससे वह काफी निराश हुआ। **ऐन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका** (खंड XVII पृ. १२७-२८) बतलाता है कि "यह (चुनाव में हारना) मैक्समूलर के जीवन की एक बड़ी निराशा थी, जिसका उसके ऊपर बहुत समय तक प्रभाव रहा।"

## मैक्समूलर के वेद भाष्य का उद्देश्य

हालांकि १८६० में बोडेन चेयर के लिए मैक्समूलर का चयन नहीं हुआ, फिर भी वह बोडेन के उद्देश्य की पूर्ति के लिए योजनाबद्ध तरीके से लगातार प्रयास करता रहा। मगर यहाँ प्रश्न यह है कि एक संस्कृत के विद्वान होने के नाते उसका वेदभाष्य के प्रति क्या दृष्टिकोण था? वेदभाष्य करने में उसका क्या उद्देश्य था? क्या वह मैकॉले जैसे संस्कृत एवं भारत के कट्टर विरोधी का अनुयायी था या एक उदारवादी विचारक था?

मूलर के जीवनी लेखक निराद चौधरी का मत है कि 'उसने मध्यम मार्ग अपनाया', (वही. पृ. १३४), या यह कहिए कि उसने एक बहुरूपिया जैसा खेल खेला, जिससे कि ब्रिटिशों के राजनैतिक उद्देश्यों की भी पूर्ति होती रहे और भारतीयों को भी शब्द जाल में बहकाए रखा? मैक्समूलर एक अर्न्तमुखी व्यक्ति था, जिसने ऋग्वेद के भाष्य करने के पीछे अपने सच्चे मनोभावों और उद्देश्यों को अपने जीवन भर कभी भी सार्वजनिक रूप से उजागर नहीं किया। मगर अपने हृदय की भावनाओं को १५ दिसम्बर १८६६ को केवल अपनी पत्नी को लिखे पत्र में अवश्य व्यक्त किया। उसके ये मनोभाव एवं उद्देश्य आम जनता को तभी पता चल सके, जब उसके निधन के बाद, १९०२ में उसकी पत्नी जोर्जिना मैक्समूलर ने उसकी जीवनी व पत्रों को सम्पादित कर, दो खण्डों में एक दूसरी जीवनी प्रकाशित की। यदि श्रीमती जोर्जिना उसे अप्रकाशित पत्रों को प्रकाशित न करती तो, विश्व उस छद्मवेशी व्यक्ति के असली चेहरे को आज तक भी नहीं जान पाता। अपनी पत्नी को लिखे इस पत्र में मैक्समूलर ने अपने वेद भाष्य के उद्देश्य को पहली बार दिल खोलकर उजागर किया। वह लिखता है:

"I hope I shall finish that work, and I feel convinced, though I shall not live to see it, that this edition of mine and the translation of the Veda will hereafter tell to a great extent on the fate of India, and on the growth of millions of souls in that country. It is the root of their religion, and to show them what that root is, I feel sure, is the only way of uprooting all that has sprung up from it during the last three thousand years."

(LLMM. Vol, 1, p. 328).

**अर्थात्** "मुझे आशा है कि मैं इस काम को (सम्पादन-भाष्य आदि) पूरा कर दूंगा और मुझे निश्चय है कि यद्यपि मैं उसे देखने के लिए जीवित न रहूंगा, तो भी मेरा ऋग्वेद का यह संस्करण और वेद का अनुवाद भारत के भाग्य और लाखों भारतीयों की आत्माओं के विकास पर प्रभाव डालने वाला होगा। यह (वेद) उनके धर्म का मूल है और मूल को उन्हें दिखा देना, जो कुछ उससे पिछले तीन हजार वर्षों में निकला है, उसको मूल सहित उखाड़ फेंकने का सबसे उत्तम तरीका है।"

(जी.प., खं. १, ३२८)

उपरोक्त पत्र को पढ़ने के बाद पाठकों को और अधिक प्रमाणों की शायद आवश्यकता नहीं रहेगी। यहाँ मैक्समूलर स्वयं सच्चाई स्वीकारता है कि उसके वेद भाष्य का उद्देश्य क्या था। वह स्पष्ट कहता है कि उसके वेद और उससे निकले हिन्दू धर्म शास्त्रों के भाष्यादि का उद्देश्य हिन्दू धर्म को जड़ से उखाड़ फेंकने का है, भले ही वेदों में कितना ही श्रेष्ठ ज्ञान क्यों न हो। यदि वह इतना पक्षपाती और पूर्वाग्रही है, तो उसके साहित्य को पढ़ना और मानना ही व्यर्थ है।

इसका अर्थ यह भी हुआ कि जो कोई आज मैक्समूलर के वेद भाष्य को प्रामाणिक मानता है तथा वैसा प्रचार करता है, वह भी हिन्दू धर्म को जड़ से उखाड़ कर फेंक देना चाहता है। जैसा कि हम ईसाई मिशनरियों एवं कम्युनिष्टों के साहित्य व प्रचार कार्यों में देखते हैं।



## ०८. मैक्समूलर द्वारा वेदों का विकृतीकरण कैसे?

### वेद भाष्य के आधार

मैक्समूलर ने ऋग्वेद का सम्पादन और अंग्रेजी में भाष्य करने के लिए **सायणाचार्य** के भाष्य को अपना आधार बनाया, जबकि सायण से पहले भी अनेक आचार्यों ने ऋग्वेद का संस्कृत में भाष्य किया था। भगवद्दत्त के अनुसार ऋग्वेद के निम्नलिखित भाष्यकार प्रमुख थे (वेदों के भाष्यकार, पृ. २१-९३)। सभी का रचनाकाल ईसवी (AD) में दिया गया है।

स्कन्द स्वामी, नारायण, उद्गीथ, (लगभग ६३०;) हस्तमलक (७००), वेंकटमाधव (१०६०), उव्वट (१०६०), भट्टभास्कर (११वीं सदी), लक्ष्मण (११वीं सदी), आनन्दतीर्थ (११९८-१२७८), धनुश्क्यज्वा (१३वीं सदी), आत्मानन्दध (१२६०), भट्टगोविन्द (१३१०), सायण (१३१६-१३८७), मुद्गल (१४१३-१४२२), रावण (१४६०), चतुर्वेद स्वामी (१६वीं सदी) एवं स्वामी दयानन्द सरस्वती (१८२६-१८८२) जो कि मूलर के समकालीन थे। उसी समय स्वामी दयानन्द का संस्कृत व हिन्दी में तथा बम्बई से एक दूसरा वेदभाष्य अंग्रेजी में प्रकाशित हो रहा था।

स्वामी दयानन्द ने यास्क और पाणिनी आधारित प्राचीन वेदभाष्य प्रणाली का पुनरुद्धार किया, जो कि आज भी सर्वोत्तम प्रणाली मानी जाती है। मगर मैक्समूलर ने अपने पाठकों को स्वामी दयानन्द का वेद भाष्य न पढ़ने का परामर्श दिया। मूलर शायद यह नहीं जानता था कि वेदों की उत्पत्ति, ज्ञान और अर्थ के विषय में सिद्धान्तः सायण और दयानन्द दोनों एक मत हैं। स्वामी दयानन्द और सायण के वेद भाष्य प्रणाली की तुलना करते हुए डॉ. विमला लिखती हैं: "दोनों भाष्यकारों (दयानन्द और सायण) के सिद्धान्तानुसारः

१. 'वेद ईश्वरीय ज्ञान, स्वतः प्रमाण, नित्य और अपौरुषेय हैं (पृ. ६७);



२. दोनों भाष्यकारों के अनुसार वेद के शब्द, अर्थ और ज्ञान ईश्वरीय हैं। किन्तु वह ज्ञान अग्नि, वायु, आदित्य, और अंगिरा- इन चारों ऋषियों के माध्यम से मनुष्यों तक पहुँचा है।' (पृ. ६६),
३. "दोनों ही आचार्य यास्क की नैरुक्तिक शैली के अनुयायी थे।" (पृ. ९६)।

इतना सब समान होते हुए भी सायण के भाष्य पर मध्यकालीन प्रचलित प्रथाओं का प्रभाव दिखाई देता है। सायण के भाष्य की प्रमुख शैली आध्यात्मिक, ऐतिहासिक और पौराणिक है। वह वेदों में कर्म काण्ड को प्रधानता देते दिखाई देता है। डॉ. विमला लिखती हैं, "सायण अधिकांश मंत्रों के अर्थ याज्ञिक कर्मकाण्ड या पौराणिक आख्यायिकाओं और इतिहास के ढांचे में डालना चाहते हैं। इसी हेतु दोनों भाष्यकारों के वेद सम्बन्धी सिद्धान्तों में बहुलांशतः समता होने पर भी इनके अन्तिम रूप और निष्कर्ष में अन्तर है।" (वही, पृ. 96)

इस व्यावहारिक विभिन्नता का कारण यह प्रतीत होता है कि सायण विजयनगर राज्य का प्रधानमंत्री भी थे। अपनी राजकीय व्यस्तता के कारण उसने वेदभाष्य में अन्य विद्वानों का सहयोग लिया हो, जैसा कि पं. भगवद्दत्त ने संकेत दिया है (वही, पृ. ७१)। शायद इसीलिए सायण का भाष्य तत्कालीन पौराणिक पंडितों के प्रभाव से अछूता नहीं रह सका है।

## सायणाचार्य की भी उपेक्षा

मैक्समूलर ने ऋग्वेद का अंग्रेजी भाष्य करते समय सायणाचार्य के उपरोक्त तीनों सिद्धान्तों को नहीं अपनाया, बल्कि सायण की यज्ञीय, कर्मकाण्डीय शैली को और भी विरूपित करके वेद भाष्य किया। उसने अनेक शब्दों के अर्थ सायण से भी भिन्न किए। अतः मैक्समूलर ने अपने वांछित उद्देश्य की पूर्ति के लिए एक मनघड़न्त अनौखी वेदभाष्य शैली विकसित की। उसने सायण की यज्ञीय शैली का लाभ तो उठाया, परन्तु उसके मूल सिद्धान्तों की जानबूझकर उपेक्षा की और सायण से भी भिन्न वैदिक शब्दों के मन माने अर्थ करके, एक नई शैली को जन्म दिया। जिसमें ऐतिहासिक, विकासवाद, गाथावाद और तुलनात्मक भाषावाद का मिश्रण है। उसने अपनी भी शैली को समान रूप से सारे ऋग्वेद में नहीं अपनाया था। बल्कि प्रत्येक मंत्र के लिए एक विशेष चयनात्मक शैली को अपनाया। इसीलिए उसके भाष्य में एकरूपता नहीं है।

मैक्समूलर ने सायण भाष्य को सम्भवतः इसलिए चुनना प्रतीत होता है कि उसके कुछ मंत्रों के अर्थों में कर्मकाण्डीय प्रणाली का प्रभाव है, जिसे मैक्समूलर ने अपनी मिशनरी गतिविधियों के लिए उपयोगी पाया हो। लेकिन वास्तव में ऋग्वेद मुख्यतया एक

आध्यात्मिकवादी ग्रंथ है। जिसकी उसने उपेक्षा की। सायण ने वेदों के अर्थ **आध्यात्मिक, आधिदैविक** और **आधिभौतिक** - तीन प्रकार से करने का विधान माना है और आध्यात्मिक विधि को प्रधानता दी। परन्तु फिर भी उसका भाष्य चौदहवीं सदी की सामाजिक प्रथाओं से अछूता न रह सका।

## मैक्समूलर की वेद भाष्य शैली

हालांकि मैक्समूलर ने सायण भाष्य शैली को आधार बनाया। परन्तु उसकी आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक शैलियों में से किसी को न अपना कर अपनी नई शैली विकसित की। उस शैली का आधार क्या था? इस विषय में वह स्वयं अपने १८७८ के एक हिबर्ट भाषण में बतलाता है कि उसने वैदिक शब्दों के अर्थ किस प्रकार किए हैं। वह स्वयं स्वीकारता है:

“All we can do is to find, if possible the original focus of thought , and then follow the various directions taken by the rays that proceeded from it. This is what I have endeavoured to do, and if in doing so, I may seem to have put a new garment upon old, all I can do is that. I see no other way, unless we all agree to speak not only Sanskrit, but Vedic Sanskrit.”

(Lectures on the Origin and Growth of Religion, pp. 245-246).

**अर्थान्त-** "हम जो कुछ कर सकते हैं, वह यदि सम्भव हो सके तो वेद के मूल वैचारिक विषय पर अपने को केन्द्रित करें और फिर उस प्रकाश किरण की विभिन्न दिशाओं पर ध्यान दें, जो उसने निकली हैं। यही कुछ करने का मैंने प्रयास किया है और ऐसा करते हुए यदि मैंने उस प्राचीन को नया वस्त्र पहना दिया हो या नई दिशा दे दी हो तो, मैं यही कर सकता हूँ। मैं और कोई रास्ता नहीं देखता, जब तक कि हम इस बात से एक मत न हों कि हम केवल लौकिक संस्कृत नहीं बल्कि वैदिक संस्कृत की बात कर रहे हैं"।

(लैक्चर्स ऑन दी ओरिजिन एण्ड ग्रोथ ऑफ रिजीजन, पृ. २४५-२४६)

अतः मैक्समूलर ने सायण शैली को भी पूरी तरह से नहीं अपनाया, बल्कि मंत्र के किसी एक विशेष शब्द को अपनी इच्छा से चुनकर, उसके चारों तरफ लौकिक संस्कृत के आधार पर, वेदार्थ का महल खड़ा कर दिया। उसने ऋषि के बताए मंत्र के देवता यानी मूल विषय की उपेक्षा करके अपना चयनात्मक तरीका अपनाया। इसी लिए उसके वेद भाष्य में अनेक विसंगतियां हैं। काश! उसने मंत्र के साथ दिए गए 'देवता' यानी 'उसके मुख्य विषय' को मंत्रार्थ का आधार बनाकर यास्क की नैरुक्तिय विधि से (जिसका महर्षि दयानन्द ने उद्धार

किया) भाष्य किया होता तो उसके वेदार्थ में विसंगतियां नहीं होतीं। मगर जो व्यक्ति वेद भाष्य करने के पहले से ही पक्षपाती और वेद को जड़ से उखाड़ने के लिए संकल्पबद्ध हो तो, उसके वेदार्थ में वैदिक सत्य के दर्शन कैसे होंगे? ऐसे में तो वेदार्थ का विकृतीकरण होना स्वाभाविक है। अतः मैक्समूलर ने जानबूझ कर मंत्रों का विकृत अर्थ करके अपने पाठकों को वेद का भ्रामक सन्देश दिया।

## सायण - मैक्समूलर शैली की आलोचना

वेदों के प्रकाण्ड विद्वान महर्षि दयानन्द सरस्वती मैक्समूलर के समकालीन थे और उसी समय भारत में उनका संस्कृत व हिन्दी में ऋग्वेद का भाष्य एक मासिक पत्रिका में प्रकाशित हो रहा था। तब तक प्रो. विल्सन की देख-रेख में, जो उस समय ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय का पुस्तकालयाध्यक्ष भी था, मैक्समूलर के दो खण्ड ई.आई.सी. द्वारा प्रकाशित हो चुके थे। इन खंडों के वेद भाष्य को देखकर महर्षि दयानन्द ने अपने **ग्रंथ ऋग्वेदारिभाष्य भूमिका** में (पृ. ८५-११) उदाहरण देकर सायण की यज्ञीय और मैक्समूलर के वेद भाष्य शैली की आलोचना की। मैक्समूलर के संस्कृत ज्ञान एवं वेदभाष्य के विषय में स्वामी जी ने अपने ग्रंथ **'सत्यार्थ प्रकाश'** (समु. ११, पृ. २६१-२६३) में लिखा है कि- "मैक्समूलर साहब के संस्कृत साहित्य और थोड़ी-सी वेद की व्याख्या देखकर मुझको विदित होता है कि मैक्समूलर साहब ने इधर-उधर आर्यवर्तीय लोगों द्वारा की हुई टीका देखकर, कुछ-कुछ यथा-तथा लिखा है!"

जैसाकि **"युञ्जन्तिमै ब्रन्वं चरन्तं परितस्थुषः। रोचन्ते राचनादिवि"** (ऋ. १.६.१)। इस मंत्र में (**ब्रन्वं**) का अर्थ **घोड़ा** किया है। इससे तो जो सायणाचार्य ने 'सूर्य' अर्थ किया है, सो अच्छा है। परन्तु इसका ठीक अर्थ **'परमात्मा'** है। इतने से जान लीजिए कि जर्मनी देश और मैक्समूलर साहब में संस्कृत-विद्या का कितना पांडित्य है।" इस प्रकार स्वामी जी ने सायण और मैक्समूलर दोनों के वेद भाष्यों की कटु आलोचना की है।

इसीलिए मैक्समूलर ने बैरामजी मालबारी को लिखे पत्र में दयानन्द के भाष्य को एक **'दुःखदायी आधार'** कहा:

स्वामी जी और मैक्समूलर का आपस में कभी मिलना नहीं हुआ, क्योंकि न मैक्समूलर कभी भारत आए और न स्वामी जी कभी इंग्लैंड गए। इतना ही नहीं मैक्समूलर, स्वामी जी के जीवन काल में उसकी आलोचना का उत्तर न दे सका। परन्तु स्वामी जी के अचानक निधन के बाद अपनी प्रतिक्रिया में कहा:

“From what has come to light after Dayanand Saraswati’s death, I am afraid that he was not simple minded and straight forward in his work as a reformer as I imagined.”

(Chips from a German Workshop, Vol.11, p. 182).

**अर्थात्**- "दयानन्द सरस्वती के निधन के बाद जो कुछ प्रकाश में आया है, उससे प्रतीत होता है कि वह अपने समाज सुधार के कार्य में सीधा-साधा और स्पष्ट वक्ता नहीं था, जैसा कि मैं समझता था"

(चिप्स फ्रॉम ए जर्मन वर्कशॉप, खंड २, पृ. १८२)

मैक्समूलर का यह कहना कि दयानन्द स्पष्ट वक्ता नहीं था, सरासर असत्य है, क्योंकि स्वामी जी जैसा स्पष्ट वक्ता तो विश्व इतिहास में नहीं मिलेगा। स्वामी जी ने मैक्समूलर के वेदभाष्य तथा ईसाईत और बाइबिल की अपने ग्रंथ 'सत्यार्थ प्रकाश' के ग्यारहवें और तेरहवें समुल्लास में सतर्क सुस्पष्ट आलोचना की है। मैक्समूलर की तरह, **क्यीन्स कालेज, बनारस** के प्रिन्सीपल **रुडॉल्फ हानेरी**, जिससे स्वामी जी की १८६७ में भेंट हुई, ने स्वामी जी के वेदभाष्य का हिन्दुओं पर प्रभाव के विषय में लिखा:

“He (Dayanand) may possibly convinced the Hindus that there modern Hinduism is altogether in opposition to the Vedas....! if once they are become thoroughly convinced of this redical error, they will not doubt abandon Hinduism at once...They cannot go back to their Vedic state; that is dead and gone, and will never revive; something more or less new must follow. We hope it may be Christianity”

(The Christian Intelligencer, Calcutta, March 1870, p. 79).

**अर्थात्** "वह (दयानन्द) सम्भवतः भले ही हिन्दुओं को विश्वस्त कर दें कि उनका वर्तमान हिन्दू धर्म वेदों से बिल्कुल भिन्न है। यदि वे एक बार इस भयंकर भूल से विश्वस्त हो भी जाते हैं, तो निश्चय ही वे एकदम हिन्दू धर्म को त्याग देंगे। वे फिर वैदिक व्यवस्था में वापिस नहीं जा सकते, क्योंकि वह धर्म तो मर एवं लुप्त हो चुका है और फिर कभी वापिस नहीं आएगा। कुछ न कुछ नया अवश्य आना चाहिए। हमें आशा है कि वह ईसाईयत ही हो सकती है"

(दी क्रिश्चियन इन्टेलीजेंसर, कलकत्ता, मार्च, १८७०, पृ. ७९)।

परन्तु भारत के हिन्दुओं ने स्वामी जी के वैदिक धर्म को हृदय से स्वीकारा और वेदों के कट्टर समर्थक और स्वाभिमानी हिन्दू हो गए, तथा ईसाई मत को नहीं अपनाया जैसी कि रुडॉल्फ को आशा थी।

सायण की वेदभाष्य शैली का स्वामी दयानन्द ने ही नहीं, बल्कि अनेक भारतीय विद्वानों ने भी कटु आलोचना की है जैसे: अविनाशचन्द्र बोस लिखते हैं- "सायण जैसे भारतीय विद्वानों के बहुमूल्य भाष्यों में एक गम्भीर दोष है कि धर्म के विषय में वे अपने काल के संदर्भ में कहते हैं और इसीलिए वे बहुधा भ्रान्तिपूर्ण होते हैं।" **(दी काल ऑफ दी वेदाज, पृ. १३)**

योगी श्री अरबिन्द ने अपने ग्रंथ "वेद रहस्य" में लिखा है: "यूरोप के सर्वप्रथम वैदिक विद्वानों ने सायण की व्याख्याओं में युक्ति युक्ता की विशेष रूप से प्रशंसा की है तो भी, वेद वाह्य अर्थ के लिए भी यह सम्भव नहीं है कि सायण की प्रणाली का या उसके परिणामों का बिना, बड़े से बड़े संकोच के अनुसरण किया जाये।" ...सायण प्रणाली की केन्द्रीय त्रुटि यह है कि वह सदा कर्मकाण्ड विधि में ही ग्रसत रहता है और निरन्तर वेद के आशय को बलपूर्वक कर्मकाण्ड के संकुचित सांचे में ढालकर वैसा ही रूप देने का यत्न करता है। सायण सर्वत्र इसी विचार (कर्मकाण्ड) के प्रकाश में प्रयत्न करता है। इसी सांचे के अन्दर वह वेद की भाषा को ठोक-पीटकर ढालता है, इसके विशिष्ट शब्दों के समुदाय को भोजन, पुरोहित, दक्षिणा देने वाला, धन-दौलत, स्तुति, प्रार्थना, यज्ञ, बलिदान इन कर्मकाण्ड परक अर्थों का रूप देता है।"

"सायण के भाष्य ने पुरानी मिथ्या धारणाओं पर प्रामाणिकता की मुहर लगा दी, जो कई शताब्दियों तक तोड़ी नहीं जा सकती।"

"परिणामतः सायण भाष्य द्वारा ऋषियों का, उनके विचारों का, उनकी संस्कृति का, उनकी अभीप्साओं का एक ऐसा प्रतिनिधित्व हुआ है, जो उतना संकुचित और दारिद्र्योपहत है कि यदि उसे स्वीकार कर लिया जाए, तो वह वेद के सम्बन्ध में प्राचीन पूजा भाव को, इसकी पवित्र प्रामाणिकता को, इसकी दिव्य ख्याति को बिल्कुल अबुद्धि गम्य कर देता है।"

**(वेद रहस्य, पूर्वाह्न, पृ. ५५-५८)**

इतना ही नहीं, श्री अरबिन्द ने यूरोपीय विद्वानों, जिसमें मैक्समूलर प्रमुख था, के वेदभाष्य पर अपनी प्रतिक्रिया इस प्रकार व्यक्त की:

"सायण से अंगीकृत ऐतिहासिक तत्व को उसने (मैक्समूलर) तुरन्त ग्रहण कर लिया और मंत्रों में आए प्रसंगों के नए अर्थ और नयी व्याख्याएँ करके, उसे विस्तृत रूप दे दिया। ये नए अर्थ और नयी व्याख्याएँ इस प्रबल अभिलाषा को लेकर विकसित की गई थी कि वे मंत्र उन बर्बर जातियों के प्रारम्भिक इतिहास, रीति-रिवाजों और संस्थाओं का पता देने वाले सिद्ध हो सकें।" ....वेद के विषय में आधुनिक (पाश्चात्य) सिद्धान्त इस विचार से प्रारम्भ होता है कि वेद एक ऐसे आदिम, जंगली और अत्यधिक बर्बर समाज की स्रोत-संहिता थे, जिसकी सामाजिक रचना असभ्य थी और अपने चारों ओर के जगत के विषय में जिसका दृष्टिकोण बिल्कुल बच्चों का सा था। इस विचार के लिए उत्तरदायी है सायण।"

(वेद रहस्य, पूर्वाङ्क, पृ. ६०)।

श्री अरबिन्द ने न केवल सायण और मैक्समूलर की वेदभाष्य शैली की आलोचना की बल्कि महर्षि दयानन्द की भाष्य शैली को अत्यन्त तर्कसंगत और वास्तविक माना। योगी जी लिखते हैं:

“In the matter of Vedic interpretation, I am convinced that whatever may be the final complete interpretation, Dayanand will be honoured as the first discoverer of the right clues. Amidst the chaos and obscurity of old ignorance and age long misunderstanding, his was the eye of direct vision that pierced to the truth and fastened on to that which was essential. He has found the keys of the doors that time had closed and rent asunder the seals of the imprisoned fountains.”

(‘Dayanand and Veda’, Vedic Magazine, Lahore, November. 1916).

यानी "वैदिक व्याख्या के विषय में मेरा यह विश्वास है कि वेदों की सम्पूर्ण अन्तिम व्याख्या कोई भी हो, ऋषि दयानन्द को यथार्थ निर्देशों के प्रथम आविर्भावक के रूप में सदा सम्मानित किया जाएगा। पुराने अज्ञान और बीते युग की मिथ्याज्ञान की अव्यवस्था और अस्पष्टता के बीच में यह उसकी ऋषि दृष्टि ही थी, जिसने सच्चाई को ढूँढ निकाला और उसे वास्तविकता के साथ बाँध दिया। समय ने जिन द्वारों को बन्द कर रखा था, उनकी चाबियों को उसी ने पा लिया और बन्द पड़े हुए स्रोत की मुहरों को उसी ने तोड़कर परे फेंक दिया।"

(दयानन्द और वेद, वैदिक मैगजीन, नव. १९१६, लाहौर; वेदों का यथार्थ स्वरूप, पृ. ५८)।

उपरोक्त उद्धरणों से सुस्पष्ट है कि मैक्समूलर ने वेद भाष्य तीन प्रकार से विकृत किया-

- १- उसने भारतीयों द्वारा अमान्य सायण शैली को जानबूझकर अपनाया; और उसे भी पूरी तरह नहीं अपनाया।
- २- दूसरे उसने वैदिक संस्कृत भाषा के शब्दों को लौकिक संस्कृत भाषा के आधार पर खींच तान कर अर्थ किए, क्योंकि वह निरुक्त व पाणिनीय व्याकरण नहीं जानता था;
- ३- तीसरे उसके उद्देश्य ही वेदभाष्य को विरुपित कर ब्रिटिश सरकार के राजनैतिक एवं धार्मिक (ईसाईयत) हितों की पूर्ति के लिए हिन्दूधर्म को जड़ से उखाड़ फेंकना था।

तो फिर ऐसे पूर्वाग्रही और पक्षपाती लेखक से कोई ऋग्वेद के सत्यार्थ की आशा कैसे कर सकता है? इसीलिए मैक्समूलर ने स्वामी दयानन्द द्वारा उसकी आलोचना का उत्तर देने का भी कभी साहस नहीं किया।

इसके अतिरिक्त वेद भाष्य करते हुए, मैक्समूलर का उद्देश्य वेद के मौलिक सन्देश को उजागर करना नहीं था, बल्कि अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए पूर्वाग्रहों से ग्रस्त होकर वैदिक संस्कृति व धर्म के विषय में ऐतिहासिकता एवं वैचारिक विकासवाद सिद्ध कर करना था। इस संदर्भ में मैक्समूलर का जीवनी लेखक निराद चौधरी लिखते हैं:

“The primary objective of Muller’s Sanskrit studies was neither philology nor literature as such but the evaluation of religious and philosophical thought...Mentioning the fact that all later Sanskrit books on religion, law and philosophy refer back to one early and unique authority called by the comprehensive name of the Veda”.

(ibid. p. 65)

**अर्थात्-** "मैक्समूलर के संस्कृत साहित्य के अध्ययन का उद्देश्य न भारतीयों के भाषा विज्ञान को जानने का था, और न साहित्य समझने का बल्कि उसका उद्देश्य भारतीयों के धार्मिक और दार्शनिक चिन्तन के विकास क्रम को सिद्ध करना था। उसने सुस्पष्ट कहा कि वेद के बाद भारतीयों द्वारा लिखे गए धर्म, विधि एवं दर्शन संबंधी सभी संस्कृत ग्रंथ उसी प्राचीन और अद्वितीय प्रामाणिक ग्रंथ, जिसे कि एक व्यापक नाम वेद के द्वारा जाना जाता है, की ओर इंगित करते हैं।"

(वही, पृ. 165)

उपरोक्त उद्धरण से सुस्पष्ट है कि मैक्समूलर मानता था कि हिन्दुओं के सभी धार्मिक ग्रंथ वेदों को प्राचीनतम और प्रामाणिक मानते हैं। यदि वेदों में किसी प्रकार विकासवाद सिद्ध हो जाए तो वेदों की श्रेष्ठता स्वयं समाप्त हो जाएगी। इसी उद्देश्य से उसने २९ जनवरी १८८२ की बैराम मालबारी को निम्नलिखित पत्र लिखा:

“As I told you on a former occasion, my thoughts while writing these lectures (the Hibbert) were with the people of India. I wanted to tell those few at least whom I might hope to reach in English what the true historical value of their ancient religion is, as looked upon, not from an exclusively European or Christian, but from an historical point of view. I wished to warn against two dangers, that of undervaluing or despising the ancient national religion, as is done so often by your half – European youths and that of overvaluing it, and interpreting it as it was never meant

to be interpreted of which you may see a painful instance in Dayanand Saraswati's labours on the Veda".

"Accept the Veda as an ancient historical document, containing thoughts in accordance with the character of an ancient and simple minded race of men, and you will be able to admire it, and to retain some of it, particularly the teaching of the Upanishads, even in these modern days, But disocover in it 'steam engines and electricity' and European philosophy and morality', and you deprive it of its true character, you destroy its real value, and you break the historical continuity that ought to bind the present to the past. Accept the past as a reality, study it and try to understand it, and you will then have less difficulty in finding the right way toward the future".

(LLMM, Vol. 2, pp. 115-116).

**अर्थात-** "जैसा कि मैंने तुम्हें एक दूसरे अवसर पर बतलाया था कि हिबर्ट भाषणों को लिखते समय मेरे विचारों का लक्ष्य भारत के लोगों के बारे में था। मैं उन थोड़े से लोगों को बताना चाहता हूँ जिन तक मैं कम से कम अंग्रेजी भाषा के माध्यम से उन तक पहुँचने की आशा करता हूँ कि उनके प्राचीन धर्म का सच्च, ऐतिहासिक मूल्य क्या है। जैसा कि देखा जाता है, न केवल यूरोपीय अथवा ईसाई दृष्टि से, बल्कि एक ऐतिहासिक दृष्टिकोण से देखा जाता है। मैं दो खतरों के प्रति सावधान करना चाहता हूँ; पहला भारत के प्राचीन धर्म की उपेक्षा या उसका अवमूल्यन करना, जैसा कि तुम्हारे यूरोपीय युवकों द्वारा किया जाता है। और दूसरा उस धर्म का अति मूल्यांकन करना या ऐसी व्याख्या करना, जो कि पहले कभी नहीं की गई। और इसका तुम एक दुःखदायी उदाहरण दयानन्द सरस्वती का वेदों पर किए गए परिश्रम में देख सकते हो।"

"तुम वेद को एक प्राचीन ऐतिहासिक दस्तावेज के रूप में स्वीकारों, जिसमें कि एक प्राचीन और सीधे-साधे चरित्र वाली जाति के लोगों के विचारों का वर्णन है, जब तुम इसकी प्रशंसा कर सकोगे और इसमें से कुछ को स्वीकार करने योग्य हो सकोगे, विशेषकर आज के युग में भी उपनिषदों की शिक्षाओं को लेकिन तुम इसमें डूँडो, भाप के इंजन, बिजली, यूरोपीय दर्शन और नैतिकता और तुम इसके सच्चे स्वरूप को इससे अलग कर दो, तुम इसके वास्तविक मूल्यों को नष्टकर दो और तुम इसकी ऐतिहासिक निरंतरता को नष्ट-भ्रष्ट कर दो जो कि वर्तमान को इसके अतीत से जोड़ती चली आ रही है। अतीत को एक वास्तविकता के रूप



स्वीकारो, उसका अध्ययन करो और उसे समझने का प्रयत्न करो और फिर तब तुमको भविष्य के लिए अपना अगला सही कदम उठाने में कम कठिनाई होगी।"

**(जी.प. खंड, पृ. ११५-११६)**

इसके अतिरिक्त वेदभाष्य के विषय में उसने स्वीकार किया कि वेद-वैदिक संस्कृत में हैं, न कि लौकिक संस्कृत में। इसीलिए इनका सत्य अर्थ करना कठिन है। इस सत्य को उसने ऋग्वेद के छः खण्डों में भाष्य प्रकाशित करने के ४३ वर्ष बाद यानी अपने जीवन के अंतिम चरण में स्वीकारते हुए १८९० में प्रकाशित अपनी पुस्तक, 'वैदिक हिम्स' की भूमिका में लिखा:

"No one who knows anything of the Veda, would think of attempting, a translation of it at present. A translation of the Rigveda is a task for the next century. "

**(Vedic Hymes Vol. 1, Max Mullar and H. Oldenberg, 1890, Introduction, p. IX).**

यानी "जो कोई वेद के बारे में थोड़ा भी जानता है, वह वर्तमान में उसके भाष्य करने के प्रयास की भी नहीं सोचेगा। ऋग्वेद के भाष्य का काम अगली सदी का है।"

उसने यहाँ तक लिखा:

"If by translation we mean a complete and satisfactory of final translation of the whole of the Regveda, I shall be feel inclined to go even further then Prof. Von Roth. Not only shall we wait till the next century for such a work, but I doubt whether we shall ever obtained it".

**(ibid. p. ix)**

**अर्थात्-** "यदि भाष्य करने से हमारा तात्पर्य ऋग्वेद का सम्पूर्ण और सन्तोषजनक सही अनुवाद करने से है, तो मैं प्रोफेसर वान रॉथ से भी आगे जाना चाहूँगा। हमें न केवल अगली शताब्दी तक प्रतीक्षा करनी होगी, बल्कि मुझे संसय है कि हम कभी भी ऐसा कर पाएँगे"!

**(मैक्समूलर एवं औल्डिनबर्ग, वैदिक हिम्स, खंड एक, भूमिका। गृ, १८९०)**

मैक्समूलर ने उपरोक्त शब्द तब लिखे, जब वह १८७६ में ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय से पदमुक्त हो चुका था। १८८२ में वेदों पर व्याख्यान दे चुका था। जो 'इंडिया व्हाट केन इट टीच अस' पुस्तक में छपे। इतने पर भी उसने अपने पिछले छः खंडों के ऋग्वेद भाष्य में कोई सुधार लाने की इच्छा नहीं जताई और न ही यह कहा कि मेरे ये वेद भाष्य अप्रामाणिक या असन्तोषजनक हैं।

उसके बहुरूपिएपन की एक पोल और खोल दूँ कि उसने १८७७ में सेन्ट जोन्स कॉलेज में भाषण देते हुए कहा कि "मेरा काम ईसाई मिशनरियों को धर्मान्तरण कार्य में मदद

करना है"। अतः मैक्समूलर अपने आन्तरिक हृदय से हिन्दुओं के धर्म शास्त्रों के प्रति हिन्दुओं में हेय भावना जगाकर उन्हें ईसाईयत में धर्मान्तरित करने के उद्देश्य से आजीवन प्रयास करता रहा। मगर उसी सभी मान्यताएँ अनुचित, यथार्थ से परे और हठ धर्मिता से भरी होने के कारण अब निरस्त हो चुकी हैं। परन्तु हिन्दू विरोधी मिशनरी और मार्क्सिस्ट मैक्समूलर की उन्हीं घिसी पिटी बातों को मीडिया में उछालते रहते हैं।

मैक्समूलर के ऋग्वेद एवं अन्य हिन्दू धर्म शास्त्रों के मूल सन्देश को चयनात्मक आधार पर तोड़ मरोड़ कर प्रस्तुत करने का उद्देश्य यही था कि भारतीयों को ईसाईयत में धर्मान्तरित करके ब्रिटिश राज्य को सुदृढ़ बनाया जा सके। १८८७ में सैन्ट जॉस कॉलेज में भाषण देते हुए उसने कहा, "जब मैंने यूनीवर्सिटी प्रेस के लिए इन अत्यधिक महत्वपूर्ण पवित्र पुस्तकों के अनुवादों का काम प्रारम्भ किया, तो अनेकों में से मेरा एक उद्देश्य मिशनरियों को सहायकता करना था।" "हम उस मिशनरी के बारे में क्या सोचेंगे, जो हमें धर्मान्तरित करने तो आया है, परन्तु उसने कभी हमारी बाइबिल नहीं पढ़ी। लेकिन ऐसा कहा जाएगा, कि तुम इस बात से इन्कार नहीं कर सकते हो कि हिन्दू बहुदेवतावादी हैं और वे मूर्तियों की पूजा करते हैं। लेकिन हमें उनकी अपनी बाइबिल-वेद जो कि भारत की किसी भी पुस्तक से पहले की हैं निःसन्देह हम वहाँ ऐसी दैवी शक्ति के अनेक नाम पाते हैं, अनेक देवता, जैसा कि हम कहने के आदी हैं, लेकिन वहाँ ऐसे भी उद्धरण हैं, जिनमें कि ईश्वर का एकत्व सुस्पष्ट है।"

(जी.प. खं. १, भूमिका पृ. ४५)

यहाँ यह कहना उचित होगा कि हिन्दू धर्म सम्बन्धी जितना भी साहित्य तत्कालीन (१८४९-१९४७) ब्रिटेन या भारत में रहने वाले अंग्रेजों एवं ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में प्रशिक्षित अंग्रेज और भारतीय लेखकों ने लिखा है, उस सब पर मैक्समूलर के हिन्दू धर्म विरोध की छाया स्पष्ट दिखाई देती है। आश्चर्य तो यह है कि ब्रिटेन का हिन्दू धर्म विरोध तो भारत में ब्रिटिश राज समाप्त होने और अंग्रेजों के चले जाने के बाद भी समाप्त नहीं हुआ और आज भी चला आ रहा है। अभी २००९ में प्रकाशित **एन्साक्लोपीडिया ब्रिटैनिका** (ले० अर्थर लेबेनिनन बाशम, जे.ए.बी. ब्यूटीनिन और बेंडी डोनीगर-स्टूडेन्ट्स होम एडीशन) में लिखा है कि-

- (i) "Krishna was worshipped with his adulterous consort Radha."
- (ii) "Vishnu often acts deceitfully, selfishly or helplessly"
- (iii) About Shiva Lingam "It says, " yet another epiphany is that of the ligam, an upright rounded post usually of

stone, representing a phallus in which form he is worshipped throughout India.”

- (i) अर्थात् "कृष्ण अपनी व्यभिचारिणी प्रेयसी राधा के साथ पूजा जाता था"
- (ii) विष्णु अक्सर कपटता, स्वार्थपरता, या विवशता से व्यवहार करता है।"
- (iii) "सारे भारत में शिव-लिंग की पूजा होती है" आदि।

यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि ऐन्साक्लोपीडिया के प्रबन्धकों को हिन्दू धर्म के बारे में लिखवाने के लिए कोई निष्ठावान हिन्दू विद्वान नहीं मिला। बल्कि उन्होंने हिन्दू विरोधी ब्रिटिश लेखकों से जान बूझकर हिन्दू धर्म शास्त्रों के बारे में लिखवाया। ताकि भारत में चर्च का धर्मान्तरण का काम आसान हो सके। अतः मैक्समूलर द्वारा स्थापित हिन्दू धर्म शास्त्रों के विकृतीकरण का आन्दोलन ब्रिटेन में आज तक चला आ रहा है।



elibrary.thearyasamaj.org

## ०९. मैक्समूलर ने वेदों में क्या विकृत किया ?

निःसन्देह मैक्समूलर ने वेदों के विभिन्न विषयों पर ब्रिटिश सरकार ओर ईसाईयत के हितों की पूर्ति के लिए व्यापक साहित्य लिखा। इसमें वेदों का रचनाकाल एवं रचनाकार, वेदों में मानव इतिहास, वैदिक देवतावाद, बहुदेवतावाद, वैदिक कर्मकाण्ड, भाषा का इतिहास, विकासवाद एवं धर्म के विभिन्न विषयों पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की तथा अनेक मनघड़न्त नवीन अवधारणाओं को जन्म दिया। जो कि परम्परागत वैदिक मान्यताओं के पूर्णतया विरुद्ध हैं।

इसीलिए हम यहाँ पहले वेदों के मुख्य विषयों पर भारतीय दृष्टिकोण प्रस्तुत करेंगे और फिर इस की समीक्षा करेंगे कि मैक्समूलर ने क्या और किस तरह वेदों को विकृत किया, जिसे कि ब्रिटिश सरकार ने व्यापक रूप से भारत तथा अन्य देशों में प्रचारित किया।

### हिन्दू संस्कृति में वेदों का महत्त्व

वेद का अर्थ है 'ज्ञान' या वह विद्या जिससे सभी सांसारिक, अधिभौतिक ओर आध्यात्मिक विद्याओं का ज्ञान होता है। वेद ईश्वरीय ज्ञान है। वेदों का ज्ञान शाश्वत सार्वदैशिक सर्वाकालिक एवं मानवमात्र के लिए सामन रूप से कल्याणकारी है। ईश्वरीय ज्ञान होने के कारण वेद-ज्ञान मूल है। वेद नित्य हैं। प्रलय हो जाने पर भी वे ईश्वर के ज्ञान में रहते हैं। वेद, वैदिक धर्म की आत्मा है। ऐसा सभी हिन्दू धर्म शास्त्र मानते हैं। वेद स्वतः प्रमाण हैं। अन्य हिन्दू धर्मशास्त्र जैसे ब्राह्मणग्रंथ, आरण्यक, उपनिषदें, स्मृतियां, पुराण, आगम-निगम, रामायण- महाभारत वेदानुकूल होने पर ही प्रामाणिक हैं, अन्यथा नहीं। वेद-निरुक्त हिन्दुओं को मान्य नहीं हैं।

चारों वेदों के चार प्रमुख विषय हैं-

- (i) ऋग्वेद का मुख्य विषय ज्ञान,
- (ii) यजुर्वेद का कर्म,

- (iii) सामवेद का उपासना, और  
(iv) अथर्व का विषय विज्ञान है।

वेदों में मनुष्य को लगातार अधिकतम सर्वांगीण विकास करने की प्रेरणा दी गई है। वेद सम्पूर्ण ज्ञान के मूलमंत्र हैं। वेदों में मूलरूप से सभी विद्याएँ हैं। वेद सत्य विद्याओं का पुस्तक होने के कारण प्रत्येक वैदिक धर्मों को वेदों का पढ़ना-पढ़ाना अनिवार है। इसीलिए हिन्दुओं के सभी संस्कार एवं कर्मकाण्ड वेकल वेदमंत्रों द्वारा किए जाते हैं। वेद, हिन्दू धर्म का आधार और आस्था के केन्द्र हैं। इसीलिए कहा गया है 'वेदोह्खिलो धर्म मूलम्' (मनु. २: ६) 'नास्ति वेदात्परं शास्त्रां' यानी 'वेद से बढ़कर अन्य कोई शास्त्र नहीं है' (म.भा. अनु प. १०५.६५)।

## वेदों में मानव इतिहास नहीं है, परन्तु सभी नाम वेदों से लिए गए हैं

संक्षेप में हिन्दुओं के धर्म, दर्शन, संस्कृति, आचार संहिता एवं नैतिक मूल्यों का मूल आधार वेद ही हैं। इसीलिए ब्रिटिश शासकों ने भी हिन्दुओं को ईसाईयत में धर्मान्तरित करने और भारत में अपना स्थायी राज्य स्थापित करने के उद्देश्य से ऋग्वेद व अन्य हिन्दू धर्मशास्त्रों को विकृत करने के लिए मैक्समूलर को अनुबंधित किया।

मैक्समूलर ने भी माना:

"I think I may say that there really is no trace whatever of any foreign influence in the language, the religion or the ceremonial of the ancient Vedic literature of India. It presents us with a homegrown poetry and a home grown religion."

(India. P. 128)

**अर्थात्-** "मैं मानता हूँ कि वास्तव में भारत के प्राचीन वैदिक साहित्य, भाषा, धर्म और कर्मकाण्ड पर किसी तरह का कोई बाहरी प्रभाव नहीं है। यह काव्य और धर्म पूर्णतया भारतीय है। इसी लिए वैदिक साहित्य मनुस्मृति महाभारत और पुराणों में, सभी जगह धर्म के विषय में वेदों को सर्वश्रेष्ठ प्रामाणिक ग्रंथ कहा गया है।"

(वही, पृ. १२८)

"In these very books (Vedic literature), in the Laws of Manu, in the Mahabharat and in Puranas, the Veda is everywhere proclaimed as the highest authority in all matters of religion."

(India, p. 130)

**अर्थात्**- "इन बहुत सी पुस्तकों (वैदिक साहित्य) में, मनु के नियमों में, महाभारत में और पुराणों में, वेद को हर जगह धर्म के सभी मामलों में सर्वोच्च अधिकार के रूप में घोषित किया गया है।"

(India, p. 130)

मैक्समूलर वेदाध्ययन को अनेक कारणों से महत्वपूर्ण और अनिवार्य मानता है। वह लिखता है:

"I maintain then that for a study of man, or, if you like, for a study of Aryan humanity, there is nothing in the world equal in importance with the Veda. I maintain that to every body who cares for himself, for his ancestors, for his history, or for his intellectual development, a study of vedic literature is indispensable; and that, as an element of liberal education, it is for more important and far more improving, than the reigns of Babylonian and Persian kings, aye even the, dates and deeds of many, of the kings of Judah and Israel.

(India, pp. 102-103)

**अर्थात्** "आर्य लोगों, यहाँ तक कि मनुष्य मात्र के विकास के अध्ययन के लिए विश्व में वेदों के समान अन्य कोई महत्वपूर्ण नहीं है। मैं यह भी मानता हूँ कि कोई व्यक्ति स्वयं अपने, अपने पूर्वजों, अपने इतिहास अथवा अपने बौद्धिक विकास के बारे में जानने के जिज्ञासा रखता है, उसके लिए वैदिक साहित्य का अध्ययन न केवल अपरिहार्य है और बल्कि उदार दृष्टि से अध्ययन के लिए यह बैबीलोनियाई अथवा परसियन राजाओं, यहाँ तक कि बाइबिल के जुडाह और इज़राइल के इतिहास और उन राजाओं के कारनामों जानने से भी अधिक महत्वपूर्ण है।"

(इंडिया, वही पृ. १०२-१०३)

अतः मैक्समूलर आर्य जाति ही नहीं, बल्कि मानव इतिहास को जानने के लिए वेदों के अध्ययन को परमावश्यक मानता है। इसलिए हिन्दुओं के आचार-विचार, रीति-रिवाज संस्कार व संस्कृति जानने के लिए वेदों का अध्ययन अत्यन्त महत्वपूर्ण है। वेद देववाणी है। अतः उसके सत्यार्थ को समझने के लिए प्राचीन यास्क की नैरुक्तीय वेद भाष्य शैली को अपनाना चाहिए, जिसका कि उन्नीसवीं सदी में महर्षि दयानन्द सरस्वती ने पुररुद्धार किया है।

## मैक्समूलर की दृष्टि में वेद का स्थान

एक कट्टर ईसाई होने के कारण मैक्समूलर वेदों को बाइबिल से निचली श्रेणी का मानता है। कैथोलिक कौमनवेल्थ को दिए गए एक साक्षात्कार में यह पूछे जाने पर कि विश्व में कौन-सा ग्रंथ सर्वोत्तम है, तो उसने कहा:

“...there is no doubt, however, that ethical teachings is far more prominent in the Old and New Testament than in any other Sacred Book.” He also said “It may sound prejudiced, but taking all in all, I say the New Testament. After that, I should place the Quran which in its moral teachings, is hardly more than a later edition of the New Testament. Then would follow.....according to my opinion the Old Testament, the Southern Buddhist Tripitika, the Veda and the Avesta.”

(LLMM. Vol. 11. pp. 322-323).

अर्थात्- "इसमें कोई सन्देह नहीं कि यद्यपि, किसी भी अन्य 'पवित्र पुस्तक' की अपेक्षा (ईसाईयों के धर्म ग्रंथ) ओल्ड और न्यू टेस्टामेंट में नैतिक शिक्षाएं प्रमुखता से विद्यमान हैं। उसने यह भी कहा यह भले ही किसी को पक्षपातपूर्ण लगे, लेकिन सभी दृष्टियों से मैं कहता हूँ कि न्यू टेस्टामेंट (सर्वोत्तम) है। इसके बाद, मैं कुरान को कहूँगा, जो कि अपनी नैतिक शिक्षाओं में न्यू टेस्टामेंट के नवीन संस्करण के लगभग समीप है। उसके बाद मेरे विचार से ओल्ड टेस्टामेंट (यहूदियों का धर्मग्रंथ), दो सदरन बुद्धिस्ट त्रिपिटिका, (बौद्धों का धर्मग्रंथ) वेद और अवेस्ता (पारसियों का ग्रंथ) है"।

(जी. प., ख. 2, पृ. 322-323)

अतः मैक्समूलर ईसाईयों के धर्मग्रंथ बाइबिल को सबसे श्रेष्ठ और वेद को कुरान से निचले और अवेस्ता से उत्तम श्रेणी का मानता है। इससे अधिक हठधर्मी व पक्षपात और क्या हो सकता है? सत्ताईस पुस्तकों एवं अनेक लेखकों द्वारा लिखी गई, हजारों विरोधाभासों से पूर्ण, ५ वोटों की अधिकता से चुनी गई, और्थिक कौंसिल में ३९७ ईसवी में स्वीकृत- न्यू टेस्टामेंट, भला प्रेरणादायक व सत्य ज्ञान से ओत-प्रोत वेद से उत्तम कैसे हो सकती है? न्यू अवेस्ता के वर्तमान स्वरूप को तो १५४६ में वैधता प्रदान की गई।

(एल. गार्डनर, ब्लड ऑफ दी होली ग्रेल, पृ. ५०)

क्या मैक्समूलर बाइबिल सम्बन्धी उपरोक्त तथ्यों से अनजान था या उसने जानबूझकर वेदों को निम्न स्तर का कहा?

## वेदों का रचना काल

हिन्दू धर्म की मान्यता है कि ईश्वर ने वेदों की रचना सृष्टि यानी प्राणी मात्र आदि की रचना के साथ की और वैदिक काल गणना के आधार पर आज (२००९ ईसवी से) वेदों की रचना हुए "एक अरब छियानवे करोड़ आठ लाख तिरैपन हजार एक सौ दस (१,९६,०८,६३,११०) वर्ष हो गए हैं। आधुनिक विज्ञान भी मानव रचना को लगभग इतना ही मानता है। हिन्दुओं के कर्मफल सिद्धान्त की वैधानिकता इसी बात पर आधारित है कि मनुष्य को उसके कर्मों और उसे फल व दण्ड को मनुष्य के जन्म के साथ ही उसे बता दिया जाए। अतः परमात्मा ने मनुष्य की सृष्टि के साथ ही उसके लिए वेद के रूप में अपेक्षित ज्ञान का प्रकाश किया। अतः वेद आदि सृष्टि काल से हैं।

इस सत्य को मानते हुए मैक्समूलर लिखता है कि:

"If there is a God who has created heaven and earth, It will be unjust on His part if He deprives millions of His souls, born before Moses of His devine that God gives His Divine knowledge from his first appearance on earth."

(Science and Religion).

**अर्थात्-** "यदि धरती और प्रकाश का रचयिता कोई परमेश्वर है, तो उसके लिए यह अन्यायपूर्ण होगा कि वह मोजिज से पूर्व उत्पन्न लाखों पुरखों को अपने ज्ञान से वंचित रखे। तर्क और धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन दोनों घोषित करते हैं कि परमेश्वर सृष्टि के आदि में ही अपना ज्ञान मनुष्यों को देता है।"

(साइंस और रिलीजन)

हिन्दू धर्म के लिए गौरव की बात है कि वेद भी इस बात की पुष्टि करते हैं:

**ऋतञ्च सत्यञ्चाभिद्धतपसोह्णध्यजायत्** (ऋ. १०.१९०.१) यानी "परमात्मा ने अपने ज्ञान बल से, ऋत और सत्य के नाम से, सम्पूर्ण विधि-विधान का निर्माण किया।" इसी की पुष्टि में महाभारत में वेद व्यास लिखते हैं:-

**अनादि निधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा।**

**आदौ वेदमयी दिव्या यतः सर्वाः प्रवत्यः**

(शां. प. २३२ः २४)

यानी "सृष्टि के आदि में स्वयम्भू परमात्मा से ऐसी दिव्य वाणी (वेद) का प्रादुर्भाव हुआ, जो नित्य और जिससे संसार की प्रवृत्तियाँ (गतिविधियाँ, कर्मादि) चले।



मनु स्मृति के अनुसार "सब पदार्थों के नाम, भिन्न-भिन्न कर्म और व्यवस्थाएँ, सृष्टि के प्रारम्भ में, वेदों के शब्दों से ही बनाई गई है।" (१:२१)

अतः वेदों का रचनाकाल सृष्टि के आदि से हैं। वेदों के रचनाकाल के संबंध में मैक्समूलर अपनी पुस्तक 'हिस्ट्री ऑफ एन्शिएन्ट संस्कृत लिटरेचर' (१८५९) में लिखता है कि

"We may arrive at 1200 to 1000 B.C. as the initial period of the Vedic poetry"

यानी "वैदिक कविता का प्रारम्भिक काल १२०० से १००० ई. पू. तक के रूप में माना जा सकता है।"

उसी का अनुसरण करते हुए अधिकांश पाश्चात्य लेखकों ने वेदों का रचनाकाल २००० ई.पू. तक माना है:

(१) डब्लू डी व्हिटनी- १२०० ई.पू. (ओरियंटल एण्ड लिंग्विस्ट स्टडीज, १८७२)

(२) एल. वोन श्रोडर- २००० ई.पू. (इन्डियन लिटरेचर एण्ड कल्चर)

(३) जैकोबी ने ४५०० वर्ष ई.पू. माना (उबर डैस आफ्टर डैस ऋग्वेद) तथा

(४) दीनानाथ चुनैट ने वेदों की रचना को तीन लाख वर्ष पुराना माना (वेद काल निर्णय)।

मैक्समूलर ने जहाँ १८५९ में, वेदों का रचनाकाल १२०० ई.पू. माना, वहीं १८९० में अपनी पुस्तक 'Physical Religion' पृष्ठ, १८ पर कहा:

**"We could not hope to be able to lay down any terminus a quo. Whether the Vedic hymns were composed in 1000 or 1500 or 2000 or 3000 BC, no power on earth could ever fix."**

यानी **"हम (वेदों के आविर्भाव) की कोई अन्तिम सीमा निर्धारित कर सकने की आशा नहीं रख सकते हैं। वैदिक सूक्त १००० ई.पू. या १५००, २००० या ३००० ई.पू. में, संसार की कोई शक्ति नहीं, जो कि इसकी तिथि निश्चित कर सके।"**

इसी का समर्थन करते हुए बिंटरनिट्ज़ ने अपनी पुस्तक 'The Age of the veda' (pp 10-11) में कहा

**"We must, however, guard against giving any definite figures where such a possibility is, by the nature of the case excluded"**

अर्थात् "हमें कोई निश्चित संख्या देने से बचना होगा, जबकि यह विषय ही ऐसा है जिसमें कोई निश्चित तिथि देने की सम्भावना नहीं है।"

इसी प्रकार **"रिलीजन ऑफ दी वेदाज"** का लेखक **मौरिस ब्लूमफील्ड** लिखता है:

"Anyhow, we must not be beguiled by that kind of conversation which merely salves the conscience into thinking that there is better proof for any later date such as , 1500, 1200 or 1000 B.C. rather than the earlier date of 2000 B.C. Once more frankly we do not know". (p-19)

**अर्थात-** "कुछ भी हो, हमें इस प्रकार की अनुदारता के धोखे में नहीं आना चाहिए जो अपनी आत्मा को केवल सन्तुष्ट कर लेती है कि १५००, १२०००, १००० ई.पू. को मानने के लिए की अपेक्षा २००० ई.पू. के अधिक अच्छे प्रमाण हैं- "एक बार फिर यदि स्पष्टवादिता से कहना हो तो हम कहेंगे कि हम नहीं जानते।" (पृ. 19)

अब हम इस विषय की समीक्षा नोबिल पुरस्कार विजेता **मैटरलिंग** की टिप्पणी के साथ समाप्त करते हैं। अपनी पुस्तक **"ग्रेट सीक्रेट"** में वह लिखता है:

"As for the sources of the primary source (of Veda), it is almost impossible to re-discover them. Here we have only the assertions of the occultist tradition, which seem, here and there, to be confirmed by historical discoveries. This tradition attributes to the vast reservoir of the wisdom that somewhere took shape simultaneously with the origin of man to more spiritual, entitles, to begins less entangled in matter."

(prelog p. 6).

इसका सारांश यह है "कि (वेद के) आदि स्रोत को फिर से खोज लेना असंभवप्राय है। यहाँ हमें अध्यात्मवादी परम्परा के वचन मिलते हैं, जिनकी कही-कहीं ऐतिहासिक अनुसन्धानों से भी पुष्टि होती है। इस परम्परा के अनुसार ज्ञान के विशाल भंडार का आविर्भाव मनुष्य की उत्पत्ति के साथ अधिक आध्यात्मिक और प्रकृति में अनासक्त व्यक्तियों पर हुआ"

(ग्रेट सीक्रेट, प्रीलोग पृ. ६)।

इसी सन्दर्भ में **मैटरलिंग** ने प्रसिद्ध जर्मन पुरातत्ववेत्ता **हालेड** के कथन को उद्धृत किया कि **"प्राचीन शास्त्र (वेद) कम से कम सत्तर लाख (७०,०००,००) वर्ष पुराने हैं"**। इन उदाहरणों से वेदों के रचनाकाल की अति प्राचीनता सिद्ध होती है।

## वेदों के रचनाकार

हिन्दू धर्म की परम्परागत मान्यता है कि मनुष्य के सर्वांगीण विकास के लिए मूल ज्ञान की आवश्यकता होती है। अदि मूल ज्ञान को मनुष्य नहीं बना सकता है। उसे केवल संसार का सृष्टिकर्ता सर्वज्ञ परमेश्वर ही दे सकता है। मनुष्य मूल ज्ञान को विकसित, सुस्पष्ट

एवं व्यावहार योग्य बना सकता है। किसी भी ज्ञान के ईश्वरीय होने के लिए यह आवश्यक है कि वह ज्ञान मानव सृष्टि के आदि में दिया गया हो। वह मानव इतिहास, राजा-रानियों की कहानियों, राजनैतिक युद्धों आदि के वर्णनों से मुक्त हो, न कि जैसा हम इतिहास, रामायण, महाभारत, बाइबिल व कुरान में देखते हैं। वह ज्ञान, सत्य, तर्कसंगत, विवेकपूर्ण, विकासोन्मुख, मानव कल्याणकारी, सबके लिए एक समान, सर्वहितकारी एवं पक्षपात रहित हो। वह ज्ञान जातिभेद, लिंगभेद, वर्गभेद, भाषाभेद से मुक्त हो। वह ज्ञान सार्वदेशिक, सार्वकालिक, सर्व-समान, एवं मत, पंथ और सम्प्रदायों के पक्षपातों से मुक्त हो। वह वैज्ञानिक, सृष्टि नियमों के अनुकूल और विरोधाभासों से मुक्त हो। वह ज्ञान पूर्णतया समता, ममता और मानवतावादी हो।

हिन्दुओं के लिए यह गौरव की बात है कि विश्व धर्मग्रन्थों में से केवल उनके धर्मग्रंथ "वेदों" में ही ये सभी लक्षण विद्यमान हैं। मनुष्यकृत कोई धर्म जैसे- ईसाईयत, इस्लाम आदि इन लक्षणों की पूर्ति नहीं कर सकता है। इसीलिए वेद ईश्वरीय ज्ञान है।

ऐसा स्वयं वेदों से भी सुस्पष्ट है:

(१) 'अपूर्वेणेषिता वाचस्ता वदन्ति यथायथम् ।  
वदन्तीर्यत्र गच्छन्ति तदाहु ब्राह्मणं महत्' ॥

(अथर्व. १०.०८.३३)

"उस कारण रहित परमात्मा ने अपार कृपा करके सृष्टि के आदि में मनुष्य के लिए ब्राह्म ज्ञान का उपदेश दिया जिससे हमें यथार्थ ज्ञान प्राप्त होता है"

(२) 'तस्माद्य ज्ञात्सर्ववहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे ।  
छन्दांसि जिज्ञरे तस्माद्य जुस्तस्मादजायत' ॥

(यजु. ३.१७)

"हे मनुष्यों! उस पूर्ण अत्यन्त पूजनीय, जिसके लिए सब लोग समस्त पदार्थ समर्पण करते हैं, उसी परमात्मा से ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद उत्पन्न हुए।"

(३) यास्माद्यचो, प्रपातक्षन् यजुर्यस्माद न्याकान्, ।  
सामानि यस्य लोमा न्यथर्वाह्लङ्गारसो मुखम् ॥

(अथर्व. १०.७.२०)

"जो सर्वशक्तिमान् परमेश्वर हैं उसी से ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद उत्पन्न हुए। उसी को तुम वेद का कर्ता मानो।"

वेदों के इन्हीं लक्षणों के कारण वेदों के प्रकाण्ड विद्वान् महर्षि दयानन्द ने कहा "सब सत्यविद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उनका आदि मूल परमेश्वर है। वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है।"

स्वामी विवेकानन्द ने भी ज्ञान को शाश्वत माना है:

"All these vedantists also believe the Vedas to be the revealed word of God. The Vedas are expression of knowledge of God and as God is eternal. His knowledge is eternally with Him and so are the Vedas eternal."

(Complete Works of Swami Vivekanand Vol. 2, p 239).

**अर्थात्-** "वेद ईश्वर की वाणी है। ये ईश्वरी ज्ञान की अभिव्यक्ति है, क्योंकि ईश्वर शाश्वत है। इसलिए वेद ज्ञान भी शाश्वत हैं।

(स्वामी विवेकानन्द ग्रंथमाला, खं. २, पृ. २३९)

अतः चारों वेदों में जो आदि ज्ञान है, उसका रचनाकार परमेश्वर ही है।

## मंत्र दृष्टा ऋषि

वेद के वर्तमान संस्करणों में प्रत्येक वेद मंत्र या मंत्र समूहों के चार विशेष लक्षण दिए गए हैं- **ऋषि, देवता, स्वर और छन्द**। यहाँ मंत्र के ऋषि का भाव है- मंत्र के रहस्य को सुस्पष्ट करने वाला, देवता-मंत्र का मुख्य विषय व केन्द्र बिन्दु, स्वर-उच्चारण विधि और छन्द- उसी गद्य-पद्य में रचना विशेष है।

परन्तु मैक्समूलर आदि लेखकों ने वेद मंत्रों के साथ लिखे विश्वामित्र, अंगिरा, भारद्वाज आदि ऋषि को उस मंत्र विशेष का रचनाकार माना:

"Rishi or Seer means no more than the subject or the author of a hymn"

(India ibid, p. 134),

जो कि वैदिक परम्परा के पूर्णतया विपरीत है। वैदिक परम्परा के अनुसार मंत्र का ऋषि उस मंत्र का रचनाकार नहीं बल्कि उस मंत्र के रहस्य का साक्षात्कार एवं व्याख्या करने वाला और उसका प्रथम दृष्टा है। 'ऋषयो मंत्र दृष्टारः' (निरुक्त. २:११) अर्थात् यास्काचार्य कहता है "जिस-जिस मंत्र का दर्शन जिस-जिस ऋषि ने सर्वप्रथम किया और वह सत्य-मंत्रा उसने दूसरों को पढ़ाया। इस इतिहास की सुरक्षा के लिए आज तक मंत्र के साथ इस मंत्रार्थ दृष्टा ऋषि का नाम स्मरणार्थ लिखा जाता है।" (निरुक्त : १ : २०)

इसीलिए तैत्तरीय संहिता, ऐतेरय ब्राह्मण, काण्व संहिता, शतपथ ब्राह्मण एवं सर्वानुक्रमणी में मंत्रों के दृष्टाओं को ही ऋषि नाम से सम्बोधित किया गया है तथा अनेक

प्रमाण दिए हैं। अतः मंत्रों के साथ लिखे ऋषि का नाम उस मंत्र का लेखक नहीं, परंतु उसका सत्यार्थ दृष्टा एवं प्रथम प्रचारक है। ऐसी ही वैदिक परम्परा है। मैक्समूलर आदि पाश्चात्य विद्वानों का मंत्र के ऋषि को उस मंत्र का रचनाकार कहना एक भ्रम और अवैदिक परम्परा है।

## वेदों की मौलिकता

वेदों के आविर्भाव को करोड़ों वर्ष हो गए। परन्तु वे आज भी उसी मौलिक रूप में हैं। उनमें मंत्र तो क्या, शब्द व मात्रा तक का अन्तर नहीं हुआ है। इनमें पुराणों व स्मृतियों की तरह कोई बाहरी मिलावट नहीं हो सकी है। ऐसा क्यों नहीं हो सका? वेदों को श्रुति भी कहते हैं। वेदों के आदि ऋषि ने, ईश्वरीय ज्ञान वेद अपने शिष्यों को शब्द-अर्थ सहित सुनाकर उन्हें याद कराया। सुनकर हृदय में धारण किए जाने के कारण इन्हें श्रुति भी कहते हैं। ऋषियों ने वेदों की मौलिकता एवं प्रामाणिकता को सुरक्षित रखने के उद्देश्य से मंत्रों को विभिन्न प्रकार से हृदय में धारण किया। जैसे मंत्रों के शब्दों को बिना क्रम बदले सीधे-सीधे (प्रकृति पाठ) और विभिन्न प्रकार से उलट-फेर (विकृति पाठ) करके याद किया और गुरु-शिष्य परम्परा से यह व्यवस्था हजारों वर्षों तक चलती रही। ये मंत्र पाठ विधियां कम से कम तेरह हैं। पाँच प्रकृति पाठ जैसे-संहिता, पद, व्युत्क्रम, मण्डुप्लुत और क्रम पाठ, तथा आठ विकृति पाठ विधियाँ हैं जैसे- जटा, माला, शिखा, रेखा, ध्वज, दण्ड, रथ और घन। अतः इन तेरह प्रकारों से वेदों के मंत्रों को स्मरण करके इन्हें मौलिक स्वरूप में रखा गया।

**(पालीवाल, वेद परिचयिका, पृ. २७-२८)**

मैक्समूलर ने भी माना कि "वेदों के पाठ हमारे पास इतनी शुद्धता से पहुँचाए गए हैं कि कठिनाई से कोई पाठ भेद अथवा स्वर भेद तक सम्पूर्ण ऋग्वेद में मिल सकें"

**(ओरिजिन ऑफ रिलीजन, पृ. १३१)**

"The texts of the Veda have been handed down to us with such accuracy that there is hardly a various reading in the proper sense of the word or even an uncertain accent in the whole of Rigveda."

**(Origin of Religion. P.131).**

यही बात प्रो. मैक्डोनाल और डॉ. केगी ने कही है। अतः वेदों में कोई किसी प्रकार की मिलावट नहीं है। इसीलिए वेदों के सन्देश आज भी सत्य, मौलिक और प्रामाणिक हैं। ऐसा प्रत्येक हिन्दू विश्वास करता है।

## वैदिक देवतावाद

वेदों में 'देव' और 'देवता' दोनों शब्दों का व्यापक प्रयोग हुआ है। दोनों शब्द एकार्थक हैं। परन्तु अधिकांश पाश्चात्य विद्वान् दोनों शब्दों का अर्थ 'गॉड' या परमेश्वर करते हैं। जबकि दोनों शब्दों के अर्थ, विषयानुसार, ईश्वर के अतिरिक्त और भी होते हैं। सब जगह एक समान परमेश्वर नहीं।

वेदों में प्रत्येक मंत्र, मंत्र समूह अथवा सूत्र के साथ उसका देवता, लिखा होता है। यहाँ देवता शब्द का अर्थ है- "मंत्र का प्रतिपाद्य विषय" या 'मंत्र को केन्द्र बिन्दु' (तेन वाक्येन यत् प्रतिपाद्यं वसतु या देवता- वेदार्थ दीपिका) यह देवता या मुख्य विषय, परमेश्वर एवं अन्य, कुछ भी हो सकता है। ऋषियों ने मंत्र के साथ उसका देवता इसीलिए लिखा है ताकि पाठक व भाष्यकार उस मंत्र का अर्थ मुख्य विषय या उसका देवता के अनुसार करें; न कि किसी शब्द विशेष को केन्द्र बिन्दु बनाकर या उस शब्द के अर्थ की खींचातानी करके मंत्रार्थ करें। जैसा कि मैक्समूलर जैसे अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने किया है।

वेदों में मंत्र के देवता अग्नि, वायु, इन्द्र, मरुत, विष्णु, सूर्य आदि शब्दों द्वारा व्यक्त किए गए हैं। ऐसे देवता एक से लेकर छः हजार (द्विवेदी, वैदिक दर्शन, पृ. १२२) तक कहे गए हैं। मगर वेदों के मुख्य देवता तैतीस (३३) हैं। ये ८ वसु, ११ रुद्र, १२ आदित्य, इन्द्र और प्रजापति (परमेश्वर) मिलाकर तैतीस हैं। परन्तु मैक्समूलर ने इनकी पत्नियाँ भी बता दीं (इंडिया, वही पृ. १३२) जबकि वेदों में वसु, रुद्र व आदित्यों की पत्नियों का संकेत भी नहीं है। वेद मंत्रों के हजारों देवता होने का अर्थ यही है कि वेद के विभिन्न विषय हैं। तथा आधिदैविक, अधिभौतिक और आध्यात्मिक रूप से मंत्रों के अर्थ करने पर उनके अनेक विषय हो जाते हैं।

## देव/ देवता का अर्थ

निरुक्त के अनुसार-

**"देवो दानाद् वा दीपनाद् वा द्योतनाद् वा द्युस्थानो भवतीति वा"।**

**"यो देवः सा देवता" (निरुक्त ७.१५)**

इसके अनुसार ज्ञान, प्रकाश, शान्ति, आनन्द तथा सुख देने वाली सब वस्तु को देव या देवता के नाम से कहा जा सकता है।

इसीलिए यजु० (१४.२०) में कहा है कि:

**अग्निर्देवता वातो देवता सूर्यो देवता चन्द्रमा देवता वसवो देवता रुद्रा देवतादित्या देवता मरुतो देवता विश्वे देवा देवता बृहस्पतिर्देवन्द्रो देवता वरुणो देवता।**

**(यजु. १४.२०)**

अतः जो परोपकारी, दानदाता स्वयं प्रकाशमान एवं अन्व्यों को ज्ञान एवं प्रकाश देने वाला और द्यौलोक में स्थिति हो, देव या देवता है। इसीलिए दिव्यगुणों से युक्त होने के कारण परमात्मा देव है, आधार देने से पृथ्वी, ऊर्जा, प्रकाश व जीवन देने से सूर्य, शान्ति देने से चन्द्रमा और प्राणवायु देने के कारण वायु, देवता है।

भारतीय परम्परा के अनुसार वैदिक शब्दों के अर्थ, कम से कम- आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक तीन प्रकार से किए जाते हैं। उदाहरण के लिए महर्षि दयानन्द द्वारा किए गए ऐसे कुछ देवताओं के अर्थ यहाँ दिए गए हैं। परन्तु स्वामी जी मानते थे कि परमेश्वर ने मनुष्य को वेद उसके कल्याण और दैनिक जीवन में व्यवहार में लाने के लिए दिए हैं। इसलिए उन्होंने अपने वेद भाष्यों में एक चौथा व्यावहारिक अर्थ भी दिया है। स्वामी जी के अनुसार कुछ वैदिक देवताओं के विभिन्न अर्थ निम्नलिखित हैं:

(रामनाथ, पृ. १०१-१०३)

पारमार्थिक अर्थ			व्यवहारिक अर्थ	
देवता का नाम	अध्यात्म ईश्वर-परक	अध्यात्म शरीर-परक	अधिदैवत	अधिभूत
अग्नि	परमेश्वर	जीवात्मा जठराग्नि	पार्थिव अग्नि विद्युत्, सूर्य	विद्वान्, सभाध्यक्ष, राजा, सेनापति, वैद्य, योगी, न्यायाधीश, अध्यापक, उपदेशक, नेता
सूर्य	परमेश्वर	प्राण, - जीवात्मा	सूर्य, वायु, -विद्युत्	राजा, विद्वान्, सेनाध्यक्ष, वैद्य
आपः	परमेश्वर	प्राण	जल, तन्मात्राएं	माताएं, कन्याएं, आप्त प्रजाएं
इन्द्र	परमेश्वर	जीवात्मा, प्राण	सूर्य, वायु, विद्युत्	सम्राट, शूरवीर, विद्वान्, सेनापति, शिल्पी, गृहपति, धनिक, विवाहित, पति, अध्यापक, उपदेशक, कृषक, वैद्य
जातवेदाः	परमेश्वर	जीवात्मा	सूर्य, अग्नि	विद्वान्, सभाध्यक्ष, राजा
बृहस्पति	परमेश्वर	----	सूर्य, वायु, विद्युत्	विद्वान्, राजा, राजपुरुष ब्रह्मचारी, अतिथि, शिल्पी, वैश्य, सेनापति
मरुतः		प्राण	वायु	मनुष्य, अध्यापक, शूरवीर, शिल्पी
मित्र	परमेश्वर	प्राण	सूर्य, वायु,	सुहृत्, राजा, सेनेश, विद्वान्
यम	परमेश्वर	योगाङ्ग	वायु, विद्युत्, सूर्य	नियन्तावीर, न्यायकारी राजा, सेनेश
रुद्र	परमेश्वर	प्राण, जीव	अग्नि, वायु, समष्टि प्राण	राजा, सेनापति, वीर, विद्वान्, वैद्य, स्तोता, ४४ वर्ष का ब्रह्मचारी।
वरुण	परमेश्वर	प्राण, अपान,	वायु, जल, चन्द्र, सूर्य,	सेनापति, सचिव, राजा, विद्वान्

		उदान	अग्नि, विद्युत्, समुद्र	
वायु	परमेश्वर	प्राण, अन्तःकरण, इन्द्रियां	पवन, सेनेश, राजा	मनुष्य, योगी, शिष्य, सेनापति, गृह-पति, शिल्पी
विष्णु	परमेश्वर	प्राण, यज्ञ	विद्युत्, सूर्य	सेनापति, योगीराज, गृहपति, शिल्पी
विष्णु	परमेश्वर	प्राण, यज्ञ	विद्युत्, सूर्य	सेनापति, योगीराज, गृहपति, शिल्पी
वैश्वानर	परमेश्वर	जठराग्नि	अग्नि, विद्युत्, सूर्य	राजा, परब्रह्मोपासक, उपदेशक
सविता	परमेश्वर	----	सूर्य, वायु, विद्युत्	राजा, सभाध्यक्ष, विद्वान, गृहपति

## ईश्वर एक, नाम अनेक

मैक्समूलर ने वेद मंत्रों के साथ लिखे देवता शब्द- अग्नि, वायु, इन्द्र, पृथ्वी आदि तथा साथ ही ऋषि का नाम देखकर यह प्रचारित कर दिया कि वेदों के लेखक न केवल बहुदेवतावादी हैं, परन्तु वे भौतिकीय जड़ शक्तियों जैसे सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, आदि के पूजक भी हैं। परन्तु वह इस प्रयास में सफल न हो सका। क्योंकि पहले तो चारों वेदों में एक ही देव परमेश्वर को पूजा, अर्चना या प्रार्थना करने का उपदेश दिया गया है। दूसरे उस परमेश्वर अजर, अमर, अभय, अनुपम, अनन्त, अनादि, पवित्र, कर्मफल प्रदाता, निराकार, निर्विकार, न्यायकारी, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वान्तर्यामी, सृष्टिकर्ता आदि विशेषणों द्वारा कहा गया है। तीसरे यह भी सुस्पष्ट किया गया है कि उसी एक परमेश्वर के अनेक नाम हैं। वही एक परमेश्वर वरुण है, वही अग्नि, अर्यमा, यम, महादेव आदि नामों से जाना जाता है। वही परमेश्वर इन्द्र और वही मित्र, रुद्र व सूर्य है और वही मरुत, तारिश्वा है। उसी एक परमब्रह्म परमेश्वर को विद्वान लोग विभिन्न गुणों के कारण अनेक नामों से पुकारते हैं, और विभिन्न रूपों में देखते हैं।

प्रत्येक हिन्दू इसी भावना से उसी एक ही सर्वशक्तिमान परमेश्वर की विभिन्न नामों एवं विभिन्न रूपों में अर्चना करता है। वेद सुस्पष्ट कहते हैं-

१. 'देवो देवामसि' (ऋ. १.९४.१३)। ('देवों के देव तुम ही हो।')
२. 'य एको, अस्ति दंसना महां उग्रो अभिघ्नते: (ऋ. ८.१.२७) ('जो अपनी तेजस्विता के कारण परमेश्वर है, वह एक ही है।')
३. 'स एष एक-एक वृदेक एव- (अथर्व. ३.४.२०) ('वह परमात्मा एक है, एक होकर सर्वव्यापक है। वह एक ही है।')
४. 'अजह्म एक पात्' (यजु. ३४.५३) ('वह परमेश्वर अजन्मा है।')
५. इन्द्रं मित्रं वरुणमग्नि माहुपरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।



**एकं सद् विप्राबहुधा वदन्ति अग्निं यमं मारिश्वान माहुः ॥ (ऋ. १. १६४ : ४६)**

("वह परमात्मा एक है, ज्ञानी लोग उसे विभिन्न नामों से पुकारते हैं। उसी को इन्द्र मित्र, वरुण, अग्नि, सुपर्णा। और गरुत्मान् कहते हैं।")

**६. 'स धाता स विधर्ता स वायुर्नभ उचिछृतम्।**

**सोह्यर्ह्यमा स वरुणः स रुद्रः स महादेवः।**

**सोह्यग्नि स ३ सूर्यः स ३ एव महायमः (अथर्व : १३ : ४ : ३-८)**

("वही परमेश्वर, धाता, विधर्ता, वायु, अर्यमा, वरुण, रुद्र, महादेव, अग्नि, सूर्य एवं महायम है। यानी ये विभिन्न नाम उसी परमेश्वर के हैं।")

**७. "न द्वितीयो तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते।**

**न पञ्चमो न षष्ठः सप्तको नाप्युच्यते।**

**नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते।" (अथर्व. १३. ४. १६-१८)**

("वह (परमेश्वर एक ही है, उसे दूसरा, तीसरा, चौथा, पाँचवां, छठा, सातवां, आठवां, नौवां दशवां नहीं कहा जा सकता।")

**८. 'तू ही इन्द्र, विष्णु, ब्रह्म, ब्रणस्पति; वरुण, मित्र अर्यमा, रुद्र, पूषा, द्रविणोदा, सविता, देव और भग है।" (ऋ. २. १. ३, ४, ६, ७)**

**९. "वही एक ब्रह्मस्वयप होने से अग्नि, अविनाशी होने से आदित्य, संसार को गति देने के कारण वायु, आनन्दायक होने से चन्द्रमा, शुद्ध स्वरूप होने से शुक्र, सबसे बड़ा होने से ब्रह्म, सर्वव्यापक होने से आपः और सारी प्रजाओं (प्राणियों) का पालक होने से प्रजापति हैं।" (यजु. ३२ : १)**

प्रो. द्विजदास दत्त के अनुसार ऋग्वेद के प्रारम्भ से लेकर अन्त तक अनेक मंत्रों में एकेश्वरवाद सुस्पष्ट है जैसे-

१-२१-३; ४, ५, ६, ७, ८, ९; २- ३- ८; २-१२-५, ८, ९; २-१३-६; २-१६-१, २; २-१७-५; २-३५-२; २-३८-९; २-४४-१६, १७; ३-१६-२; ३-५१-४; ३-५३-८; ४-१७-५; ४-३२-७; ५-३२-९; ५-४०-५; ५ ८५-६; ६-१८-२; ६-२२-१; ६-३०-१; -३६-४; ६-४५-२; ६-४७-१८; ७-२३-५; ७-९८-६; ८-२-४; ८-१३-९; ८-१५-३ ८-२४-१९; ८-३०-१०; ८-५८-२; ८-७०-५; ८-९०-२, ३, ४; ८-११४-४; १०-५-१; १०-३१-७८; १०-३२-३; १०-१२१-१२, ३, ८. आदि

**(ऋग्वेद अनवील्ड, पृ. १८४)**

## हीनोथीज़्म (Henothesim)

जब मैक्समूलर परमेश्वर के लिए प्रयुक्त विभिन्न नामों में न तो एकत्व ही देख सका और न बहुदेवतावाद सिद्ध कर सका, तो उसने वैदिक देवस्तुति पद्धति के लिए एक नया शब्द कीनोथीज़्म (Kathenotesim) या हीनोथीज़्म (Henothesim) गढ़ा था वह लिखता है:

"If therefore there must be a name for the religion of Rig Veda, polytheism would seem at first sight the most appropriate.' The vedic polytheism differs from the Greek and Roman polytheism...." It was necessary, therefore, for the purpose of accurate reasoning to have a name, different occupying for a time supreme position, and I proposed for it the name of Kathenotesim, that is a worship of the one god after another, or a Henothesim, the worship of single god."

(India pp. 132-133)

"इसीलिए यदि ऋग्वेद के धर्म के लिए कोई नाम देना चाहें तो प्रथम दृष्टि में ही उसके लिए बहुदेवतावाद कहना सबसे अधिक उपयुक्त होगा" साथ ही कहता है कि "वैदिक बहुदेवतावाद ग्रीक और रोमन बहुदेवतावाद से भिन्न है" इसलिए इसका सबसे तर्कयुक्त व सही नाम होने के लिए बहुदेवतावाद से भिन्न नाम देना आवश्यक था। ताकि एक ही समय में सर्वोत्तम देवता की पूजा की भावना व्यक्त की जा सके। इसके लिए जो नाम मैंने प्रस्तावित किया, वह था कीनोथीज़्म (Kathenotesim) अथवा हीनाथीज़्म (Henothesim) यानी कि एक समय में एक के बाद अकेले दूसरे देवता की पूजा करना।"

(इंडिया, वही. पृ. १३२-१३३)

वैदिक बहुदेवतावाद के लिए इस मन कल्पित अनुपयुक्त शब्द हीनाथीज़्म की श्री अरविंद एवं अन्य विद्वानों ने कड़ी सटीक आलोचना की। श्री अरविन्द ने लिखा:

"What is the main positive issue in this matter? An interpretation of Veda must stand or fall by its central conception of the Vedic religion and the amount of support given to it by the intrinsic evidence of the Veda itself.

Here Dayanand's view is quite clear, its foundation inexpugnable. The Vedic hymns are chanted to the One Diety under many names, names which are used and even designed to express His Qualities and Powers. Was this conception of Dayananda's arbitrary concept fetched out of his own too ingenuous imagination?

Not at all; it is the explicit statement of the Veda itself.

One existent 'sages-not the ignorant, mind you, but the seers, the men of knowledge-speak of in many ways, as Indra, as Yama, as Maharishwan, as Agni. 'The Vedic Rishis ought surely to have known some thing about their own religion, more, let us hope than Roth or Maxmuller and this is what they knew.

We are aware how modern scholars twist away from the evidence. This hymn, they say was a later production. This loftier idea which it expresses with so clear a force, rose up some how in the later Aryan mind or was borrowed by those ignorant fire-worshippers, sun-worshippers, sky-worshippers from their cultured and philosophic-Dravidian enemies. But throughout the Veda we have confirmatory hymns and expressions. Agni or Indra or another is expressly hymned as one with all the other gods. Agni contains all other divine powers within himself, the aruts are described as all the gods. One deity is addressed by the names of others as well as his own, or most commonly, he is given as Lord and king of the universe, attributes only appropriate to the Supreme Deity. Ah, but that can not mean, ought not to mean, most not mean the worship of one; let us invent a new word, call it henotheism, and suppose that the Rishis did not really believe Indra or Agni to be the Supreme Deity, but treated any god or every god as such for the once, perhaps that he might feel the more flattered and lend a more gracious ear for so hyper-bolic a compliment! But Why should not the foundation of Vedic thought be natural monotheism? Rather than this new fangled monstrosity of henotheism. Well, because primitive barbarians could not possibly have risen to such high conceptions and if you allow them to have so risen you imperil our theory of the evolutionary stages of the human development and you destroy our whole idea about the sense of the Vedic hymns and their place in the history of mankind. Truth must hide herself, common sense disappear from field so that a theory may flourish ! I ask on this point and it is the fundamental point, who deals most straight forwardly with the text, Dayanand or the Western Scholars?

**(Dayanand and the Veda by Shri Arvind, P. 17-18)**

इस महत्वपूर्ण उद्धरण का तात्पर्य यह है कि 'इस विषय में सबसे मुख्य विचारणी चीज कौन सी है? वेदों की किसी भी व्याख्या की सफलता व असफलता इस बात पर आश्रित है कि उसमें वेद-प्रतिपादित धर्म की केन्द्रीय भावना क्या है व वेदों द्वारा प्रतिपादित प्रकरण उस भावना की कहाँ तक पुष्टि करते हैं। यहाँ पर दयानन्द के विचार अखण्डनीय हैं। उनका आधार दृढ़ एवं स्थिर है। वेदों की ऋचाओं में एक ही परम देव के अनेक नामों द्वारा गीत गाए गए हैं- जो उस परमदेव के अनेक गुणों व शक्तियों के प्रदर्शन के अभिप्राय से प्रयुक्त किये गये हैं। क्या दयानन्द ने अपनी पाण्डित्यपूर्ण स्वच्छन्द कल्पना से इनका प्रयोग किया? कदापि नहीं, यह तो स्वयं वेदों का स्पष्ट वचन है:

**'एवं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ।'**

(ऋ. १ : १६४. ४६)

अर्थात् "उस एक ही परमेश्वर के तत्त्वदर्शी ऋषि- इन्द्र, अग्नि, यम, मातरिश्वा आदि अनेक नामों से पुकारते हैं"।

अतः हमें इतनी आशा तो अवश्य करनी चाहिए कि ऋषि, अपने धर्म के विषय में रॉथ या मैक्समूलर आदि से अधिक जानते थे और यह है सत्य जिसे वे जानते थे।"

"हमें यह पता है कि आधुनिक (पाश्चात्य) विद्वान् इस प्रमाण से तोड़-मरोड़ कर कैसे बचते हैं। उनका कहना है कि इतने उन्नत विचारों वाले मंत्र उस समय के आर्यों के विचारों में कभी नहीं आ सकते थे, जिनमें इतनी दृढ़ता के साथ एकेश्वरवाद का भाव प्रगट किया गया है। यह बाद की रचना है। यह भी सम्भव है कि यह विचार उन अज्ञानी, अग्निपूजक, सूर्यपूजक, आकाशपूजक आर्यों के मन में ही पैदा न हुआ हो, अपितु इस विचार को उन्होंने अपने सुसभ्य तथा दार्शनिक शत्रु द्रविड़ों के दर्शन से अपना लिया हो। परन्तु इस विचार के पोषक प्रमाण वेदों के समस्त स्थलों में प्राप्त होते हैं। ऋचाओं में इस प्रकार के अनेक वर्णन प्राप्त होते हैं कि अग्नि अथवा इन्द्र या अन्य देव एक ही महादेव के प्रति हैं। अग्नि अपने अन्दर अन्य सब देवों की शक्ति रखता है- मरुत का सर्वदेवमय वर्णन अनेक स्थानों में उपलब्ध होता है। एक देव जहाँ अपने नाम द्वारा सम्बोधित होता है- वहाँ अन्य अनेक नामों द्वारा भी उस का आह्वान होता है।

प्रायः ऐसा देखा गया है कि एक-एक देव को विश्व का पति या राजा मानकर उसकी स्तुति आदि की गई है। उसके लिए उन सब विशेषणों का प्रयोग किया गया है, जो परमदेव के लिए ही होते हैं। ओह! परन्तु ऐसा नहीं हो सकता: ऐसा अर्थ नहीं होना चाहिए। इसका अर्थ यह बिल्कुल नहीं होना चाहिए कि एक ही ईश्वर की पूजा की जाए। आओ, हम इसके लिए एक नया शब्द गढ़ लें और यह कल्पना करें कि वैदिक ऋषि वास्तव में अग्नि, इन्द्र आदि को परम देव नहीं मानते थे। किन्तु वे प्रत्येक देव को उस समय के लिए ही (जब उसकी स्तुति की

जा रही हो) परम देव मान लेते थे ताकि सम्भवतः वह अपनी खुशामद को पाकर इन अतिशयोक्तिपूर्ण स्तुतियों को ध्यान से सुने। परन्तु वैदिक विचार को स्वाभाविक एकेश्वरवाद क्यों न माना जाए?

इस नवकल्पित हीनोथीज्म के भूत की क्या आवश्यकता है? हाँ, क्योंकि आदिकाल के लोग असभ्य थे और उनमें इस प्रकार के विचारों का पैदा होना असम्भव था। यदि हम उन असभ्य लोगों को इतना विकसित मान लें तो तो विकासवाद का सिद्धान्त नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है। जिस पर पाश्चात्य विद्वानों ने संसार का अपना क्रमिक विकास घोषित किया है। सत्य को चाहिए कि वह अपने को छिपा ले, सामान्य बुद्धि भी उनके मार्ग से अलग हो जाए, जिससे उनके सिद्धान्त संसार में सफल हो सकें। यहाँ पर मेरा मूल प्रश्न यह है कि मूल वेद के साथ, बिना किसी उलझन के सीधी और साफ तौर पर कौन चल रहा है- दयानन्द वा पाश्चात्य विद्वान।"

**(दयानन्द और वेद- श्री अरबिन्द, पृ. १७-१८)**

सुप्रसिद्ध विचारक और योगी श्री अरबिन्द की हीनोथीज्म की यह युक्तियुक्त आलोचना बहुत ही प्रभावोत्पादिनी है। इसमें सन्देह नहीं हो सकता।

इसी प्रकार द्विज दास दत्त ने हीनोथीज्म की आलोचना में लिखा:

"As a Maxmuller's charge of Henotheism or worship of many 'single gods' a number of independent deities, it represents the Rishis as flattering sycophants or cowardly liars, who could call each single god as the one Supreme Being, only to avert the wrath of the god, knowing at the same time, that he was not telling the truth. We ask the reader himself to judge whether when the rishi addresses India 'नहित्वदन्यो' गिरर्वरणोगिरः सघत्' (Rig 1057-8) "Thou who are the sole object of my praise, none but Thee shall receive my praise ! or whether when the rishi addresses Indra 'नत्यावो अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जानिष्यते' (Rig 7. 32; 22) i.e. neither in heaven nor in the earth, has appeared or shall appear any one like Thee; the Rishi is a honotheist, a base lying, a base lying flatterer of Indra, or a true monotheist declaring like Muhammad 'La elaha ill Allah, or sharikalahu".

**(Rigveda Unveiled, p. 140-141).**

अर्थात् "प्रो. मैक्समुलर के हीनोथीज्म विषयक आरोप के विषय में जिसका तात्पर्य कई स्वतन्त्र देवों का अथवा पृथक-पृथक ब्रह्म समान देवों का है। हमारा कथन यह है कि इससे ऋषियों को खुशामदी टट्टू दास अथवा भीरु असत्यवादी के रूप में मानना पड़ता है, जो

प्रत्येक अलग-अलग देव को एक सर्वोत्कृष्ट परमेश्वर कह सकते थे। इसलिए कि उस देव के क्रोध से वे बच सकें, जबकि वे यह जानते थे कि वे सत्य नहीं कर रहे। हम स्वयं पाठकों से पूछना चाहते हैं कि वे इसका निर्णय करें कि जब ऋषि इन्द्र को सम्बोधित करते हुए कहता है "नहि त्वदन्यो गिर्वणो गिरः सघत् (ऋ. १.५७.८)" अर्थात् 'तेरे अतिरिक्त मेरी स्तुति का पात्र और कोई नहीं' अथवा जब ऋषि कहता है "न त्वावां अन्योदिव्यो न पार्थिवी न जातो न जनिष्यते।" (ऋ. ७.३२.२२) अर्थात् 'न आकाश में और न पृथ्वी में कोई है या होगा जो तेरे समान हो।' ऋषि, हीनोथीज्म को मानने वाला अथवा सीधे शब्दों में, इन्द्र का एक, नीच, झूठा खुशामदी है अथवा सच्चा एकेश्वरवादी है, जो मुहम्मद के समान ही यह घोषणा करता है कि 'परमेश्वर एक और अनुपम है।' "

**(ऋग्वेद अनवील्ड, पृ. १४०-१४१)**

जब मैक्समूलर के हीनोथीज्म की कड़ी आलोचना हुई तो वह 'देव' शब्द के अर्थ के प्रकाशमान पदार्थ से विकासवाद द्वारा दिव्य, दयालु व शक्तिमान आदि अर्थ मानने लगा। वह लिखता है:

"Deva meant originally bright and nothing else, meaning bright, it was constantly used of sky, the states, the sun, the dawn, the day, the spring, the rivers, the earth. And when a poet wished to speak to all these by one and the same word-by what we should call a general term-he called them the Devas. When that had been done, Deva did no longer mean the Bright ones, but the name comprehended of all the qualities which the sky and the sun and the dawn shared in common excluding only those that were peculiar to each. Here you see how, by the simplest process, the Devas the bright ones, might become and did become the Devas, the heavenly, the kind, the powerful, the invisible, the immortal"

**(India p. 196)**

अर्थात्- "देव का प्रारम्भिक अर्थ प्रकाशमान था और कुछ नहीं। इसी अर्थ को लेकर इसका प्रयोग आकाश, तारे, सूर्य, ऊषा, दिन, बसन्त ऋतु, नदी, भूमि इत्यादि के लिए किया जाता था। जब किसी कवि ने इन सबके लिए कोई बात सामान्य रूप से कहनी होती थी तो वह देव शब्द का प्रयोग करता था। अब देव का केवल प्रकाशमान इतना ही अर्थ नहीं रह गया। इन सबके अन्दर जो सामान्य गुण थे (विशेष गुणों को छोड़कर) उनका ग्रहण, देव शब्द से हो जाता था। इस प्रकार क्रमशः देवों को दिव्य, दयालु, शक्तिशाली, अदृश्य और अमर माना जाने लगा, इत्यादि।"

(इंडिया, वही. पृ. १९६)

मैक्समूलर का विकासवाद द्वारा यह निष्कर्ष निकालना अनुचित एवं मिथ्या है। क्योंकि देव व देवता आदि का अन्य अर्थ- जीव, सभ्य, रक्षक, कमनीय, संगमनीय, आदि भी है (धर्मदेव, वही. पृ. २०६)। देव और देवों के अर्थ में विकासवाद ढूंढना मैक्समूलर की एक मनघड़न्त धारणा है।

इस प्रकार १८६९ में उसने **हिबर्ट** लेकर देने समय वैदिक 'एकेश्वरवाद' और 'बहुदेवतावाद' के बीच का एक नया नाम हीनोथीज्म सुझाया। इसकी भारत में कड़ी आलोचना हुई तो परिणामस्वरूप पन्द्रह साल बाद ४ फरवरी १८७६ को "ड्यूक ऑफ आर्ग्युअल" को लिखे पत्र में स्वीकारा कि आर्यों का धर्म शुद्ध एकेश्वरवाद है। वह लिखता है:

"The earliest known religious form of the Aryan race is, as nearly as possible, a pure monotheism—yes, that is perfectly true. But it was an undoubting monotheism, in one sense perhaps the happiest monotheism – yet not safe against doubts and negation. Doubt and negation followed, it may be by necessity, and the unconscious defenceless monotheism gave way to polytheism".

(Bharti, MMLM p. 140)

उसने लिखा "आर्य जाति का सबसे अधिक ज्ञात धर्म का स्वरूप सम्भवतः शुद्ध एकेश्वरवाद के सबसे करीब है- हाँ, यह पूरी तरह से सत्य है। लेकिन यह एक निभ्रान्त एकेश्वर था, एक दृष्टि से शायद सबसे प्रसन्नतादायक एकेश्वरवाद। फिर भी सन्देहों और अस्वीकारता के सामने सुरक्षित न था। संदेह और अस्वीकारता बढ़ती गई। शायद आवश्यकता और अनजानी सुरक्षा के कारण एकेश्वरवाद, बहुदेवतावाद में बदल गया।"

(भारती, वही पृ. १४०)

अतः मैक्समूलर ने माना कि प्रारम्भ में वैदिक धर्म एकेश्वरवादी था। इतना ही नहीं, मैक्समूलर ने अपनी अन्तिम (१८९९) पुस्तक '**दी सिक्स सिस्टमस ऑफ फिलॉस्फी**' में लिखा:

"Whatever may be the age when the collection of (the) Rigveda Sanhita was finished, it was before that age, that the notion had been formed that there is but One Being neither male nor female, a being raised high above all the conditions and limitations of personality and of human nature and nevertheless thinking that was really meant by all such names as Indra, Angi, Mitra, Vishnu, and by the name of Prajapati-Lord of creatures." They thus arrived at the conviction that above the great

multitude of gods, then' mllst be one supreme personality and after a time they declar!d that there was behind all the gods that one (Tad E Kam) of which thl' gods were but various names."

अर्थात् "ऋग्वेद संहिता के संकलन का समय कभी भी पूरा हुआ हो, लेकिन उस काल से पहले यह अवधारणा पक्की बन चुकी थी कि सभी परिस्थितियों और सीमाओं के होते हुए भी एक सर्वश्रेष्ठ सत्ता है, वह न स्त्री है और न पुरुष। उसी सत्ता को इन्द्र, अग्नि, मातरिश्वन, प्रजापति आदि नामों से सम्बोधित किया गया है।"

इससे एक बात तो साफ सिद्ध होती है कि जब तक मैक्समूलर ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में सेवारत (१८७६) रहा और ऋग्वेद का सायणाचार्य आधारित भाष्य का अंग्रेजी अनुवाद करता रहा, वह हिन्दुओं को बहुदेवतावादी कहता रहा और जब देशी-विदेशी वैदिक विद्वानों ने उसके हीनोन्मीलन की आलोचना की तो जीवन के अन्तिम वर्षों में वेदों में उसने शुद्ध एकेश्वरवाद को स्वीकारा। परन्तु फिर भी अपने वेद सम्बन्धी विचारों को पहले प्रकाशित ग्रंथों में शुद्ध करने का न कोई प्रयास ही किया, और न कोई ऐसा आदेश दिया और न अपने विचारों का खंडन किया। बल्कि मरते दम तक हिन्दुओं को ईसाई बनाने का प्रयास करता रहा।

## वेदों में मानव इतिहास एवं विकासवाद

हिन्दुओं का अटूट विश्वास है कि वेदों का आविर्भाव मानव सृष्टि से पहले हुआ। इसलिए वेदों में मानव इतिहास नहीं है। इसमें रामायण व महाभारत की तरह किन्हीं राजा-रानियों, मनुष्यों तथा ऋषियों के नाम देख कर लोगों को वेदों में इतिहास का भ्रम हो जाता है। परन्तु वास्तव में वेदों के शब्द यौगिक हैं और संसार के मनुष्यों व नदियों आदि के नाम वेदों से ही लिए गए हैं (मनु स्मृति १.२१)।

**पं. शिवशंकर** ने अपने ग्रंथ '**वैदिक इतिहासार्थ निर्णय**' (पृ. १२२-१२३) में वेदों में इतिहास होने का विस्तार से खंडन किया है। आदि शंकराचार्य, **ब्रह्मसूत्र** में मानते हैं कि:

**नाम रूपे च भूतानां कर्मणाञ्च प्रवर्त्ताम् ।**

**वेद शब्देभ्य एवादी निर्म्भ में स महेश्वरः (१.३.२८)**

**ऋषीणां नामधेयानि याश्च वेदेषु दृश्यः ।**

**शर्वक्षर्यते प्रसूतानां तान्येवैभ्योददात्यजः (१.३.३०)**

अतः "सृष्टि के पहले भी ईश्वर में शब्द विद्यमान थे। वे ही शब्द इस जगत में भी ऋषियों द्वारा प्राप्त हुए हैं। अतः वैदिक शब्द नित्य हैं। अनित्य व्यक्ति का वर्णन या इतिहास इसमें (वेद) नहीं आ सकता है।"



इसी प्रकार वेदों में विकासवाद नहीं है। वेदों में शाश्वत एवं सत्य विद्याओं के मूल सूत्र विद्यमान हैं। इन्हीं के आधार पर वैदिक संस्कृति एवं वैदिक विज्ञान की उन्नति हुई है। साथ ही वेदों में इस नैमेत्तिक ज्ञान के आधार पर सब प्रकार के सांसारिक सुख देने वाले यंत्रों, तकनीकों एवं दर्शनों के विकास की प्रेरणा दी गई है; ताकि मानव ही नहीं, सभी प्राणियों का कल्याण हो सके।

परन्तु मैक्समूलर ने वेदों में बार-बार इतिहास एवं विकासवाद ही देखा है। वेदों की प्राचीनता, विकास एवं इतिहास के विषय में मैक्समूलर लिखता है:

"The Veda may be called primitive, becilw,( he'll' is no other literary document more primitive than it: bul the language, the mythology, the religion and philosophy that meet us in the Veda open vistas of the past which no one would measure in years. Nay, they contain, by the side of simple. natural, childish thoughts, many ideas which to us sound modern or secondary and tertiary as I called them but which never then less are older than any other literary document and give us trustworthy informations of a period in the history of human thought of which we knew absolutely nothing before the discovery of the Vedas."

(India, ibid p. 109)

He further writes; "But if we mean by primitve the people who have been the first of the Aryan race to leave behind literary relics of their existence on earth, then I say the Vedic poets are primitive, the Vedic language is primitive, the Vedic religion is primitive, and taken as a whole, more primitive than anything else that we are ever like to recover in the whole history of our race, "

(India, ibid p. 114)

तात्पर्य है कि :

- (१) मैक्समूलर वेदों को सबसे प्राचीन साहित्य मानता है तथा इनकी भाषा, गाथावाद, धर्म और दर्शन नए आयामों को खोलते हैं।
- (२) वैदिक धर्म पर किसी विदेशी धर्म या संस्कृति का प्रभाव नहीं है। क्योंकि यह मानव जाति की आदि कालीन संस्कृति है।
- (३) वैदिक कवि आदि कालीन है; वैदिक भाषा आदि कालीन है; वैदिक धर्म आदि कालीन है। मानवजाति के किसी भी विषय में वैदिक धर्म सबसे आदि कालीन है आदि आदि।

(इंडिया, वही. पृ. ११४)

मैक्समूलर वेदों को मानव मस्तिष्क का बचपन या प्रारम्भिक युग मानता है:

"**Childish age of the Human mind.**"; (ibid p. 99) वह आगे लिखता है:

"Now it is exactly this period in the growth of ancient religion, which was always presupposed or postulated, but was absent anywhere else, that is clearly put before us in the hymns of Rig Veda. It is this ancient chapter to the history of human mind which has been preserved to us in Indian literature, while we look for it in vain in Greece or Rome or elsewhere"

(ibid p. 99-100)

Further he says, "I simply say that in the Veda we have a nearer approach to a beginning, and an intelligible beginning, than in the wild invocations of Hottentots or Bushmen."

(ibid, p. 101)

अतः मैक्समूलर वेद ज्ञान को मानव जाति का प्रारंभिक इतिहास मानता है, जो कि अन्यत्र किसी ग्रंथ या संस्कृति में नहीं है। वह वेद को समझ नहीं पाता है या उनकी निन्दा करना चाहता है, इसीलिए कहता है:

Large number of Vedic hymns are Childish in the extreme, tedious, low and common place."

(Chips from a German Workshop, p. 27)

**अर्थात्-** "वेदों की अधिकांश ऋचायें अत्यन्त बचपनी, कठिन और निम्न स्तर की हैं"

और जब वह ऋग्वेद के अन्तिम मंडल को देखता है, जिनमें दर्शन, विश्व कल्याण की भावना, सार्वभौमिक समता, एकता एवं समानता के सूत्र सुस्पष्ट पाता है, तो मन मानकर लिखता है कि 'कुछ ऋचायें दार्शनिक हैं':

"Now what do we find in the Veda? No doubt here and there a few philosophical hymns which have been quoted so often that people have begun to imagine that the Veda is a kind of collection of Orphic hymns. We also find some purely mythological hymns in which the Devas or gods have assumed nearly as much dramatic personality as in the Homeric hymns."

(India, pp. 98-99)

मैक्समूलर की जीवनी लेखक **निराद चौधरी** उसकी मानसिकता एवं वेदाध्यन के उद्देश्य को इस प्रकार व्यक्त करता है-

(i) "The primary object of Muller's Sanskrit studies was thus neither philology nor literature as such, but the evolution of religious and philosophical thought. Indeed, to his history of ancient Sanskrit literature he added the qualification 'so far as it illustrates the primitive religion of the Brahmans'. Therefore he was bound to specialize in Vedic literature. Mentioning the fact that all later Sanskrit books on religion, law and philosophy refer back to one early and unique authority called by the comprehensive name of the Veda". Muller writes:

"It is with the Veda, therefore, the Indian philosophy ought to begin if it is to follow a natural and historical course. So great an influence has the Vedic age (the historical period to which we are justified in referring the formation of the sacred texts) exercised upon and succeeding periods of Indian history, so closely in every branch of literature connected with Vedic tradition, so deeply have the religious and moral ideas of that primitive era taken root in the mind of the Indian nation, so minutely has almost every private and public act of Indian life been regulated by old traditional precepts, that it is impossible to find the right point of view for judging of Indian religion, morals, and literature without a knowledge of the literary remains of the Vedic age.

**(Chaudhuri, p. 135)**

(ii) "It is different, he declared, with the ancient literature of India, the literature dominated by the Vedic and the Buddhist religions. That literature opens to us a chapter in what has been called the 'Education of the Human Race,' to which we can find no parallel anywhere else." He further said, that anybody who cared for the origins of language, thought, religion, philosophy, or law and many other human creations, 'must in future pay the same attention to the literature of Vedic period as to the literature of Greece and Rome and Germany."

**(ibid. p. 290)**

(iii) "But he derived from the English Orientalists his conviction of the practical importance of Sanskrit for British administrators as well as for contemporary Hindus."

**(India, ibid p. 134)**

(iv) In "A History of Ancient Sanskrit Literature' Max Muller writes, "If then, it is the aim of Sanskrit Philology to supply one of the earliest and most important links in the history of mankind, we must go to work historically; that is we must begin, as far as we can, with the beginning, and then trace gradually the growth of the Indian mind in its various manifestations as far as the remaining monuments allow us to follow the course,"

**(Chaudhuri, ibid, p. 135)**

(v) "He imposed his ideas of India and of Hindu Religion in its most ancient form on the religious life of the Hindus of his time. His picture, which he put before the Indians and Europeans alike was built up with the help of selective principle applied to the entire body of Sanskrit literature, and the principle led him to formulate his peculiar view of the historical development of this literature."

**(ibid pp. 288- 289)**

अतः मैक्समूलर के संस्कृत अध्ययन का उद्देश्य था :

- (१) भारतीयों के दार्शनिक एवं धार्मिक विचारों में विकासवाद सिद्ध करना;
- (२) वैदिक परम्पराएँ अति प्राचीन हैं जो कि सभी भारतीय साहित्य में बिखरी हुई हैं।
- (३) भारतीय साहित्य वैदिक और बुद्ध मत के विचारों से भरा पड़ा है, जो कि मानवजाति की शिक्षा की ओर संकेत करता है;
- (४) वैदिक साहित्य को ग्रीस, रोम और जर्मनी के साहित्य के समान ऐतिहासिक दृष्टि से देखा;
- (५) संस्कृत भाषा के अध्ययन द्वारा जितना हम जान सकें, उतने गहरे तक विकासवाद की दृष्टि से देखें;
- (६) मैक्समूलर ने समस्त वैदिक एवं भारतीय संस्कृत साहित्य को अपनी चुनिंदा विधि के सिद्धान्त की सहायता से देखा और उन्हीं चुनी हुई बातों को भारतीयों एवं यूरोपीयनों को बतलाया। इसी विशेष चुनिंदा नीति के आधार पर उसने वेदों में इतिहासवाद की नींव रखी।

जब निराद चौधरी जैसा विद्वान मैक्समूलर को "हिन्दू धर्म सम्बन्धी सिद्धान्तों" के बारे में अपनी 'चुनी हुई नीति' के आधार पर खड़ा देखता है तो कोई अन्य उससे और अधिक क्या स्पष्ट कह सकता है? अतः मैक्समूलर ने जो कुछ भी लिखा, वह उसकी निजी 'चुनींदा नीति' पर आधारित था; निष्पक्ष विवेचन पर नहीं।

मैक्समूलर एवं अनेक पाश्चात्य लेखकों ने वेदों को अपनी धार्मिक आस्था और ब्रिटेन के राजनैतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए जान बूझकर विकृत किया। जिसका महर्षि दयानन्द सरस्वती, श्री अरविन्द, पं. धर्मानन्द, पं. भगवद्दत्त, स्वामी विद्यानन्द सरस्वती जैसे अनेक भारतीय विद्वानों ने इसकी सप्रमाण आलोचना की एवं भारतीय परम्परा को पुनर्स्थापित किया।

सार रूप में समझने की बात यह है कि यदि वैदिक ऋचाएँ बचपनी और निम्न स्तर की हैं तो संसार भर के राजनीतिज्ञों ने मिलकर एक स्वर से **संयुक्त राष्ट्र संगठन** एवं **मानव अधिकार संगठन** ने वेदों का '**जियो और जीने दो**' का सिद्धान्त कैसे माना? सार्वभौमिक एक राष्ट्र की वैदिक परिकल्पना, मानवता, समानता, समतावादी व्यवहार आदि को क्यों स्वीकारा? विश्व शान्ति के वैदिक सन्देश को क्यों अपनाया?

वेदों का सन्देश है:

- (१) "मनुष्य मात्र में कोई छोटा बड़ा नहीं है, सब बराबर के भाई हैं।" (ऋ. ५.६०.५)
- (२) "हम समाज के किसी भाई बहिन के साथ द्वेष, घृणा, ऊँच नीच व भेदभाव न करें।" (ऋ. ३.३०.१) "समाज के सभी लोग एक साथ मिलकर खाएं-पिएं व उपासना करें एवं मैत्री भाव से रहें।" (ऋ. ३.३०.६)
- (३) "हे मनुष्यों! तुम सब परस्पर एक विचार से मिलकर रहो, प्रेम से वार्तालाप करो। तुम लोगों का मन समान होकर ज्ञान प्राप्त करें एवं प्रेम से परस्पर व्यवहार करो।" (ऋ. १०. १९१. २)
- (४) "हे मनुष्यों! मैं तुम सबको एक-सा ज्ञान देता हूँ। तुम सभी सामाजिक व राष्ट्रीय समस्याओं पर हितकारी निर्णय से एक मत होकर अपनी सर्वांगीण उन्नति करो।" (ऋ. १०. १९१. ३)
- (५) "हे मनुष्यों! तुम सबका संकल्प एक जैसा हो। तुम्हारा हृदय व मन समान हो।" (ऋ. १०. १९१. ४)

**"सं गच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।"**

**"समानो मंत्रः समितिः समानी समानं मनः सहचित्तमेषाम्।"**  
**"समानी व आकूतीः समाना हृदयानि वः"**

(ऋ. १०. १९१. २-३-४)

अतः वेदों की समतावादी और मानवतावादी आदर्श व्यवस्था इतनी श्रेष्ठ है, जिस पर आज भी निष्पक्ष चिन्तकों को असीम श्रद्धा है। इसके विपरीत आज का तथाकथित सभ्य समाज भी उस वेद निर्दिष्ट आदर्श व समतावादी स्थिति को नहीं पहुँचा पाया है। हम विकास की ओर नहीं बल्कि अधोगति की ओर जा रहे हैं। यदि, हम वेद की समता, ममता, स्वतंत्रता, स्वविवेक एवं विश्व बंधुत्व की अवधारणाओं को समाज में ला पाते तो अनेकों युद्ध, लाखों प्राणियों की हत्या और धर्म के नाम पर घृणा, युद्ध और आतंकवाद नहीं फैलता।

यदि वैदिक शिक्षाएँ राष्ट्रों की सीमाओं को लांघकर मानव कल्याण के लिए अपनाई जातीं तो आज रंग-भेद, वर्ण भेद, नस्ल भेद, जाति भेद, राष्ट्र भेद के नाम पर हिंसा और अशांति की ज्वाला में लाखों मनुष्य न मारे जाते। अतः वेदों में इतिहास एवं विकासवाद नहीं है। बल्कि एक आदर्श व्यवस्था बतलाई गई है। जिस पर मनुष्य अभी तक नहीं पहुँच पाया है। उस मानव कल्याणकारी स्थिति तक वेदों द्वारा ही पहुँचा जा सकता है न कि इस्लामी आतंकवाद या ईसाई क्रूसेडों द्वारा।



## १०. मैक्समूलर एक ईसाई धर्म प्रचारक !

निःसंदेह मैक्समूलर एक धर्मान्ध धर्म प्रचारक था, जिसने ईसाईयत के लिए अपनी धार्मिक लड़ाईयाँ भाषा-विज्ञान और वेदभाष्य की आड़ में लड़ी। उसने ईस्ट इंडिया कम्पनी और ब्रिटिश कूटनीतिज्ञों के धार्मिक व राजनैतिक हितों के लिए न केवल वेद एवं हिन्दू धर्म शास्त्रों के विरूपित भाष्य किए बल्कि अपने भाषणों में मिशनरियों को सिखाया कि वेद और हिन्दू धर्म शास्त्रों की निंदा किस प्रकार की जाए ताकि हिन्दुओं का ईसाईयत में धर्मान्तरण का कार्य सरल हो सके। क्योंकि उसके वेद भाष्य का उद्देश्य ही यही था।

उसने जीवन भर ब्रिटिश प्रशासकीय मशीनरी का हिन्दुओं के धर्मान्तरण के लिए व्यापक रूप से प्रयोग किया। इसी संदर्भ में १६ दिसम्बर १८६८ को उसने भारत के लिए "सेक्रेटरी ऑफ स्टेट इयूक ऑफ आर्गायल" को लिखा:

"...As for more than twenty years my principal work has been devoted to the ancient literature of India, I cannot but feel a deep as real sympathy for all that concerns the higher interests of the people of that country. Though I have never been in India, I have many friends there, both among the civilians and among the natives, and I believe I am not mistaken in supposing that the publication in England of the ancient Sacred writings of the Brahmins, which had never been published in India, and other contributions from different European scholars towards a better knowledge of the ancient literature and religion of India, have not been without some effect on the intellectual and religious movement that is going on among the more thoughtful members of Indian society.

I have sometimes regretted that I am not an Englishman and able to help more actively in the great work of educating and improving the natives. But I do rejoice that this great task of governing and benefiting

India should have fallen to one who knows the greatness of the task and all its opportunities and responsibilities, who thinks not only of its political and financial bearings, but has a heart to feel for the moral welfare of those millions of human beings that are, more or less, directly, committed to his charge.

"India has been conquered once, but India must be conquered again, and this second conquest should be a conquest of education. Much has been done for education of late, but if the funds were tripled and quadrupled, that would hardly be enough.

"The results of the educational work carried on during the last twenty years are palpable everywhere. They are good and bad, as was to be expected. It is easy to find fault with what is called young Bengal, the product of English ideas grafted on the Indian mind. But young Bengal, with all its faults, is full of promise. Its bad features are apparent everywhere, its good qualities are naturally hidden from the eyes of careless observers...India can never be anglicized, but it can be reinvigorated...

"...The missionaries have done far more than they themselves seem to be aware of, nay, much of the work which is theirs they would probably disclaim. The Christianity of our nineteenth century will hardly be the Christianity of India. But the ancient religion of India is doomed and if Christianity does not step in, whose fault will it be?"

(LLMM., Vol. 1, p. 357-58).

"मेरा पिछले बीस वर्षों में मुख्य काम भारत के प्राचीन साहित्य पर केन्द्रित रहा है। उस देश के लोगों के हित के बारे में मेरी गहरी और सच्ची सहानुभूति रही है। हालांकि मैं कभी भारत नहीं गया हूँ। मगर मेरे ब्रिटिश और वहाँ के स्थानीय, दोनों ही प्रकार के लोगों में से अनेक मित्र हैं। मैं मानता हूँ कि यदि मुझे यह सोचने में कोई गलती न करे कि भारत के ब्राह्मणों की प्राचीन पवित्र पुस्तकें जो कि इंग्लैंड अथवा अन्य यूरोपीय देशों में प्रकाशित हुईं, जो पहले कभी भारत में भी नहीं हुई थी, उनका वहाँ के बौद्धिक जगत और धार्मिक आन्दोलन पर कुछ प्रभाव किए बगैर नहीं रहेंगी। यह प्रभाव उन लोगों पर भी अवश्य होगा जो कि भारतीय समाज के चिन्तनशील वर्ग के हैं। मुझे कभी-कभी खेद हुआ कि मैं एक अंग्रेज नहीं हूँ, जो कि भारत के स्थानीय लोगों को सुधारने और शिक्षित करने के महान कार्य में अधिक



सक्रियता के साथ सहायक हो सकता था। फिर भी मैं अति प्रसन्न होता यदि यह भारत पर शासन करने और भारत को लाभ पहुंचाने का काम उसको दिया जाता जो इसके महत्व को पहचानता हो तथा इसके असर और उत्तरदायित्वों के महत्व को समझता हो। वह केवल इसके राजनैतिक और आर्थिक लाभों को ही नहीं देखता, बल्कि उसका हृदय उन लाखों करोड़ों आत्माओं के प्रति नैतिकता की दृष्टि से भी उत्तरदायी हो।"

"भारत एक बार जीता जा चुका है, लेकिन भारत को फिर से दुबारा जीता जाना चाहिए और यह दूसरी जीत (ईसाई धर्म) शिक्षा के द्वारा होनी चाहिए। अभी हाल में (ईसाई) शिक्षा के लिए काफी किया जा चुका है। लेकिन यदि यह धनराशि तिगुनी या चौगुनी कर दी जाए तो ऐसा करना मुश्किल न होगा।"

"भारत का पूरी तरह से अंग्रेजीकरण नहीं किया जा सकता है, मगर इसमें फिर से जान डाली जा सकती है। मिशनरियों ने उससे कहीं अधिक सफलता पाई है, जितनी कि उन्हें आशा थी और उनके अधिकांश कामों की उपेक्षा की जा सकती है।"

"भारत की ईसाईयत शायद हमारी उन्नीसवीं सदी जैसी ईसाईयत भले ही न हो। लेकिन भारत का प्राचीन धर्म यहाँ डूब चुका है, फिर भी यदि वहाँ ईसाईयत नहीं फैलती है, तो इसमें किसका दोष होगा।?"

(जी.प. खंड १, पृ. ३५७-३५८)

इतना ही नहीं, मैक्समूलर ने स्वयं पत्र व्यवहार द्वारा भारत के तत्कालीन धार्मिक नेताओं को ईसाईयत में धर्मान्तरित करने का लगातार अथक प्रयास किया। क्योंकि यहाँ ही **राजाराम मोहन रॉय** ने ईसाईयत के **ट्रिनिटी सिद्धान्त** की जड़े उखेंड़ी थीं और *पादरी एडम* को १८२१ में, हिन्दू धर्म में दीक्षित किया था। जो कि श्री रॉय को ईसाईयत में धर्मान्तरित करने के लिए इंग्लैंड से भारत आया था।

राजा राम मोहन रॉय ने उस समय (१८२१ में) ईसाईयों द्वारा धर्मान्तरण के लिए जो तरीके अपनाए जाते थे, उन्हें अपनी 'ब्राह्मणीकल मैग्जीन' के तीसरे (१८२१) अंक में इस प्रकार लिखा:

"During the last twenty years a body of English gentlemen who are called missionaries have been publicly endeavouring in several ways to convert Hindus and Muhammadans of this country into Christianity. The first way is that publishing and distributing among the natives various books, large and small, reviling both religions and abusing and ridiculing the Gods and saints of the former (Hindus) : the second way is that of standing in front of the doors of the natives or in public roads to preach

the excellency of their own religion and the debasedness of that of others; the third way is that if any natives of low origin become Christian from the desire of gain or from any other motives, these gentlemen employ and maintain them as a necessary encouragement to others to follow their example.

It is true that the apostle of Jesus Christ used to preach the superiority of the Christian religion to the natives of different countries; but we must recollect that they were not of the rulers of those countries where they preached. Were the missionaries likewise to preach the Gospel and distribute books, in countries not conquered by the English such as Turkey and Persia etc : which are much nearer England they would be esteemed a body of men truly zealous in propagating religion and in following the example of the founders of Christianity. In Bengal where the English are the sole rulers and the mere name of Englishman is sufficient to frighten people an encroachment upon the rights of her poor timid and humble inhabitants and upon their religion can not be viewed in the eyes of God or public as a justifiable act, for wise and good men always feel disinclined to hurt those that are of much less strength than themselves and if such weak creatures be dependent on them and subject to their authority they can never attempt even in thought to mortify their feelings"

**(Christ-A, Myth by Varma pp. 61-62)**

तात्पर्य यह है कि "ईसाई मिशनरी साहित्य बांटकर, सार्वजनिक जगहों पर ईसाईयत की प्रशंसा करके और हिन्दू धर्म एवं इस्लाम की निन्दा करके और पिछड़े लोगों को प्रलोभन देकर उनका धर्मान्तरण करते हैं। ऐसा करना और भी सरल होता है जबकि अंग्रेज उस समय भारत के प्रशासक है।" ईसाई मिशनरी आज भी काँग्रेस के राजनैतिक संरक्षण में उपरोक्त तरीकों से भारत में हिन्दुओं का धर्मान्तरण कर रहे हैं जैसा कि १८० साल पहले राजा राम मोहन रॉय के समय में करते थे।

यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि १८वीं और १९वीं सदी में बंगाल में हिन्दू भक्ति आन्दोलन व अन्य उपायों से पुनर्जागरण की एक प्रबल लहर के बीच से गुज़र रहा था। तथा ईश्वर चन्द्र विद्यासागर, राजा मोहन रॉय, केशव चन्द्र सेन, प्रतापचन्द्र मजुदार आदि ब्रह्म समाजी नेता हिन्दू समाज में धार्मिक एवं सामाजिक सुधार लाने में सक्रिय थे। मैक्समूलर ने

ब्रह्म समजा के नेताओं को ईसाईयत अपनाने के लिए अपने तर्कों एवं सुझावों सहित अनेक पत्र लिखें:

"On 3rd August 1881, he wrote to Majoomdar... : "My Dear Mr. Protap Chunder Majoomdar, I must tell them all what I told you when we parted at Oxford, if you really want me, I shall always be ready...I have watched your struggles in India for many years, and I have often pleaded your cause in England with friends who were frightened by what they heard about Keshub Chunder Sen. Yet I trusted in you and in the goodness of cause, and remained silent, at least in public."

(Bharti, p. 149)

### पहला पत्र-

३ अगस्त १८८१ को मजूमदार को लिखे पत्र में मैक्समूलर ने कहा: "मैंने तुम्हारे भारत में संघर्षों व समाज सुधारों को अनुक वर्षों से देखा है। मैंने तुम्हारे पक्ष में इंग्लैंड में दलीलें दी हैं जो कि वे केशवचन्द्र सेन के कथनों से भयभीत थे। फिर भी मैं तुम्हारे उद्देश्य को श्रेष्ठ होने के कारण तुम पर भरोसा करके चुप रहा (भारती पृ. ४९)।

### दूसरा पत्र-

अपनी मृत्यु से लगभग १६ महीने पूर्व जनवरी १८९९ को उसने मजूमदार को फिर एक लम्बा पत्र लिखा। जिसके कुछ अंश इस प्रकार हैं:

"My dear friend, you know how many years. I have watched your efforts to purify the popular religion of India, and thereby to bring it nearer to the purity and perfection of other religions, particularly Christianity. You know also that I have paid close attention to the endeavours of those who came before you, of men like Rammohun Roy, Debendranath Tagore, Keshub Chunder Sen, and others, in whose footsteps you have boldly followed, and whose work you have faithfully carried on, as far as circumstances allowed you to do so. What I have much admired, both in yourself and your noble predecessors and fellow workers, is the patience and the even temper with which you have prosecuted your religious and social reforms."

"Now it seems to me that the first things you have to do is to try to remove the differences that still exist among yourselves, and to settle how much of your ancient religion you are willing to give up, if not as utterly false, still as antiquated. You have given up a great deal, polytheism, idolatry, and your elaborate sacrificial worship. You have surrendered also, as far as I can judge, the claim of divine revelation which had been so carefully formulated by your ancient theologians in support of the truth of the Vedas. These were great sacrifices, for whatever may be thought of your ancient traditions, to give up what we have been taught by our fathers and mothers, requires a very strong conviction, and a very strong will. But though this surrender has brought you much nearer to us, there still remain many minor points on which you differ among yourselves in your various samajees or congregations. Allow me to say that these differences seem to me to have little to do with real religion, still they must be removed, because they prevent united action on your part...If you are once united among yourselves, you need no longer trouble about this or that missionary, whether he comes !EOm London, Rome, Geneva, or Moscow. They all profess to bring you the Gospel of Christ. Take then the New Testament and read it for yourselves, and judge for yourselves whether the words of Christ, as contained in it, satisfy you or not.

"I know that you yourself, as well as Rammohun Roy and Keshub Chunder Sen, have done that. I know one countryman of yours who wrote a searching criticism on the Old and New Testaments, and then joined the Christian Church, as established in England, because there was something in the teaching and life of Christ, which he could not withstand. I know this is not an argument, yet it is something to reflect on.

"Christ comes to you as He comes to us in the only trustworthy records preserved of Him in the Gospels. We have not even the right to dictate our interpretation of these Gospels to you, particularly if we consider how differently we interpret them ourselves. If you accept His teachings, as there recorded, you are a Christian. There is not necessity whatever of your being formally received into the membership of one or the

other sect of the Christian Church, whether reformed or unreformed. That will only delay the growth of Christianity in India."

..... You would be surprised if you know how many honest Christians feel exactly what you feel about the Atonement, and that in this case also, those who compass sea and land to make one proselyte, are the very people who prevent you from becoming proselytes, from coming to Christ and to us.

..."I have told you already that Keshub Chunder Sen, in intimate conversation, told me that to all intents and purposes he was a disciple of Christ, and when I wrote to you, and when I think of you, I cannot resist the feeling that you too are a true follower of Christ...."

"Tell me some of your chief difficulties that prevent you and your countrymen from openly following Christ. I shall do my best to explain how I and many who agree with me have met them, and solved them. I do not hesitate to say that on some of these points we may have to learn from you more than we can teach you, and I say this honestly, and from personal experience. That too will be a lesson difficult to learn for our bishops and missionaries, but in Christian humility they will have to learn it. From my point of view, India, at least the best part of it, is already converted to Christianity. You want no persuasion to become a follower of Christ. Then make up your mind to act for yourselves. Unite your flock, and put up a few folds to hold them together, and to prevent them from straying. The bridge has been built for you by those who came before you. Steep boldly forward, it will not break under you, and you will find many friends to welcome you on the other shore, and among them none more delighted than your old friend and fellow labourer. F. Max. Muller,"

(LLMM, Vol. 2, pp. 411-416)

**अर्थात्** "मेरे प्रिय मित्र- तुम जानते हो कि मैं कितने वर्षों से तुम्हारे भारत के धर्म को सुधारने के प्रयासों को देख रहा हूँ, जिसके द्वारा तुम इसे अन्य धर्मों, विशेषकर ईसाईयत की पवित्रता और पूर्णता के समीप लाने का प्रयास कर रहे हो।" "... तुमने काफी कुछ त्याग दिया है, जैसे बहुदेवतावाद, मूर्तिपूजा और विस्तृत बलिदानी पूजा। जहाँ तक मैं समझ सका हूँ कि तुमने वेदों का ज्ञान ईश्वरीय होने का दावा भी त्याग दिया है। जिसको प्राचीन धर्मशास्त्रियों ने बड़ी सावधानी से वेदों के सत्यों के समर्थन में स्थापित किया था।"

"यदि तुम एक बार आपस में इकट्ठा हो जाओ (यानी ईसाई हो जाओ, लेखक) तो तुम्हें इस बात की चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है कि यह या वह मिशनरी लंदन, रोम, जिनेवा अथवा मास्को से आया है। वे सब तुम्हें क्राइस्ट के सुसमाचार तक ले जाने का ही प्रयास करते हैं। फिर तुम- न्यूटेस्टामेंट उठाओ और अपने आप पढ़ो और स्वयं जाँच करो कि जीजस के वचन, जैसे कि उसमें दिए गए हैं, तुम्हें सन्तुष्ट करते हैं या नहीं।"

"जीजस क्राइस्ट तुम्हारे पास उसी प्रकार आता है, जैसे कि वह हमारे पास आता है। क्योंकि गोस्पिलों में उसके विश्वसनीय वचन सुरक्षित हैं। यदि तुम उसकी शिक्षाओं को स्वीकार करते हो, जैसी कि वे वहाँ दी गई हैं, तो तुम एक ईसाई हो।"

"आपको और आपके देशवासियों को खुले तौर पर ईसा मसीह की शरण में आने में जो कठिनाईयाँ हों, उन्हें मुझे बताओ और जब मैं उनके बारे में तुम्हें लिखूँगा तो बतालाऊँगा कि मैंने और अन्य अनेकों, जो मुझसे सहमत हैं ने, उन्हें किस तरह हल किया है। मैं कहने में हिचकिचाता नहीं हूँ कि इनमें से कुछ बातों के बारे में हमें तुमसे सीखना है, उससे अधिक जो हम सिखा सकते हैं और यह सब मैं सच्चाई से और अपने अनुभव के आधार पर कह रहा हूँ। वह सब हमारे मिशनरियों और बिशपों को भी सीखना मुश्किल होगा। मगर उनको सीखना पड़ेगा।"

"मेरे दृष्टिकोण से तो भारत, कम से कम इसका सर्वोत्तम भाग, ईसाई मत में परिवर्तित हो चुका है। आपको ईसाई बनने के लिए प्रेरणा देने की भी आवश्यकता नहीं है। साहस पूर्वक बस अब आगे बढ़ने के लिए मन पक्का करिए। अपने लोगों को इकट्ठा करो और उनको संगठित बने रखने का प्रबन्ध करो। उन्हें भटकने से बचने के लिए प्रयास करो। तुम्हारे आने के लिए तुमसे पहले आने वालों ने पुल बना दिया है। साहसपूर्वक आगे बढ़िए। यह (पुल) तुम्हारे बोझ से टूटेगा नहीं और आप देखेंगे कि दूसरे किनारे पर आपका स्वागत करने के लिए अन्यो के साथ आपका पुराना साथी और मित्र भी उपस्थित होगा। जिससे अधिक खुश कोई और न होगा,"

एफ. मैक्समूलर।

(जी.प. खंड २ पृ. ४११-४१६)

## तीसरा पत्र-

मजूमदार ने इसकी प्रतिक्रिया में एक भारतीय अखबार में इस प्रकार लिखा है:

"So we must either renounce our own national temperament or renounce Christ or reembody our faith and aspirations under a new name, form and spirit. We have taken this third course"

(LLMM, Vol. 2, p. 394)

**यानी** "अतः हमें या तो अपनी राष्ट्रीय मानसिकता त्याग देनी चाहिए या हम क्राइस्ट तो त्याग दें या हम अपने धर्म और आकांक्षाओं के एक नए नाम के अंतर्गत उसे नया स्वरूप और तेजस्विता प्रदान करें। हमने इस तीसरे विकल्प को अपनाया है।"

(जी.प. खं. २ पृ. ३९४)

## चौथा पत्र-

कुछ दिनों बाद मजूमदार ने, उसके जून १८९९ के पत्र के त्तर में ईसाईयत के प्रति कुछ उदारता दिखाई और लिखा-

"A wholesale acceptance of the Christian name by Brahmo--Samaj is neither possible nor desirable, within reasonable time; it would lead to misconception, which would do only harm. But acceptance of the Christ spirit, or, as you term it, "the essential religion of Christ", is not only possible, but an actual fact at the present moment. Liberal souls in christendom will have to rest content with that, at least now; and then let the name take care of itself"

(LLMM, Vol. 2, p. 419)

"ब्रह्म समाज द्वारा किसी ईसाई नाम को पूरी तरह अभी निकट भविष्य में स्वीकारना न तो सम्भव ही है, और न वांछनीय। उससे एक गलत संकेत जाएगा, जो कि केवल हानिकारक होगा। लेकिन क्राइस्ट की भावना स्वीकारना या जैसा कि तुम इसे 'क्राइस्ट का सारभूत धर्म' कहते हो, ने केवल सम्भव है बल्कि वर्तमान में एक सच्चाई भी है। ईसाई तन्त्र में उदार आत्माओं को कम से कम अभी तो, इतने पर ही सन्तोष करना पड़ेगा। और फिर नाम अपने आप उभरकर आ जाएगा।"

(जी.प. खं. २ पृ. ४१९)

## पाँचवां पत्र-

उपरोक्त पत्र से प्रोत्साहित होकर मैक्समूलर ने नवम्बर १८९९ को मजूमदार को इस प्रकार लिखा:

"...of course, I have been abused by the Indian papers and by the journals in England. Let me answer one point in your very kind letter. The name to be adopted by your own reformed Hinduism would be merely geographical expression. Hinduism as a religion would mean the religion of the Hindus or of India, and this would comprise every variety of religion practised in India, Durga worship, Buddhism, Mohammedanism, etc. It would be the name of a mere congeries. You object to anything like Christian, even Christian Brahmos is not satisfactory to you. But surely you owe much to Christ and Christianity, your very movement would not exist without Christianity. One must be above public opinion in these matters, and trust to truth which is stronger than public opinion. However, the name is a small matter. Only I thought that truth and gratitude would declare in favour of Christian Brahmos, or Christian Aryas."

(LLMM, Vol. 2, p. 397)

**अर्थार्थ** "वास्तव में भारतीय और इंग्लैंड के पत्रों में मेरी निन्दा की गई है। पर तुम्हारे सुधारे हुए नए हिन्दू धर्म का नाम ऐसा हो जो कि केवल भौगोलिक भावनाओं का परिचायक हो। उस हिन्दुज्म का धर्म के रूप में, मतलब होगा हिन्दुओं का या भारत का धर्म और इस तरह उसमें वे सभी प्रकार के मत होंगे जो कि भारत में प्रचलित हैं; जैसे दुर्गा पूजा, बौद्धमत, मुहम्मदी मत आदि। इस प्रकार का नाम उन सब मतों का सम्मिश्रण नाम होगा। तुम्हें ईसाईयत जैसे नाम पर आपत्ति है अथवा क्रिश्चियन ब्रह्मोज भी पसन्द नहीं है। लेकिन निश्चय ही तुम क्राइस्ट और ईसाईयत के प्रति आभारी हो, तुम्हारा यह आन्दोलन ईसाईयत के बिना जीवित न रह सकेगा। फिर भी नाम एक छोटा-सा मामला है। मैंने सोचा कि सच्चाई ओर कृतज्ञता के फलस्वरूप तुम क्रिश्चियन-ब्रह्मोज या क्रिश्चियन-आर्याज नाम के पक्ष में निर्णय लोगे"।

(जी. प., खं. २, पृ. ३९७)

## छठा पत्र-

मैक्समूलर के क्रिश्चियन ब्रह्मोज या क्रिश्चियन आर्याज नाम पर मिशनरियों की आपत्तियाँ होने पर भी, उसने पी.सी. मजूमदार को ११ मार्च १९०० को फिर एक पत्र इस प्रकार लिखा:

"My dear friend, you ought to know me enough to know that I am not trying to convert you and your friends to Christianity. If you are not a Christian, you must not call yourself a Christian. But I confess when I



judge from Keshub Chunder Sen's writings, I thought that he was, and you were, more of a Christian than many who call themselves so. And if that is so, then the name of Brahmos or Hindus seemed to me a mere misnomer, and so far not quite honest..."

"I do not want you to join any existing Church or sect, I only wish you to give honour to the name of Christ, to whom you owe the best part of your present religion. If you have more truth to bring into the Christian Church, do so by all means. Tell me what doctrines you wish to profess, and it would not be difficult to tell you whether they are compatible with Christianity or not. But you will have to speak definitely, so that we may understand each other..."

"Do not be afraid, do not leave things unsaid which you hold to be true, but which will not be popular in India. There is great work open to you, and work that must be done, and which many include Brahmans and Mohammedans as well as Christians. But to do that work well will require perfect sincerity, we require men like Keshub and like yourself.

"I wish I were younger and stronger, but as long as I can I shall fight for religion in the true sense of the word." Religion should unite us, not separate us...

**(LLMM vol. 2, pp. 28-29)**

"मेरे प्रिय मित्र- तुम मुझे काफी जानते हो, तो यह भी जानो कि मैं तुम्हें और तुम्हारे साथियों को ईसाईयत में धर्मान्तरित करने की कोशिश नहीं कर रहा हूँ। यदि तुम ईसाई नहीं हो तो तुम्हें अपने को ईसाई नहीं कहना चाहिए। लेकिन मैं स्वीकारता हूँ, जब मैं केशवचन्द्र सेन को उसके लेखों के आधार पर रखता हूँ, तो मुझे लगता है कि वह एक ईसाई है और तुम भी उन सबसे अधिक ईसाई हो जो कि अपने को ईसाई होने का दावा करते हैं। और ऐसा है, तो ब्रह्मोज या हिन्दू नाम देना मुझे अनुपयुक्त प्रतीत होता है, और अब तक यह ईमानदारी नहीं रही। मैं नहीं चाहता कि तुम किसी वर्तमान सम्प्रदाय या चर्च को अपना लो। मैं तो केवल इतना चाहता हूँ कि तुम जीजस क्राइस्ट के नाम का सम्मान करो, जिसके प्रति तुम्हारे सम्प्रदाय का अधिकांश समर्पित है।"

**(जी.पं., खं. २, प. २८-२९)**

मैक्समूलर ने देवेन्द्रनाथ टैगौर और केशवचन्द्र सेन और प्रथम भारतीय आई.सी. एस. सत्येन्द्र नाथ टैगौर को भी ईसाईयत में धर्मान्तरित करने का प्रयास किया। परन्तु वह सफल न हो सका। मगर अपनी निराशा को उसने इस प्रकार व्यक्त किया-

"मेरी कामना है कि मैं और अधिक युवा और शक्तिशाली होता। फिर भी जब तक मैं कर सकता हूँ, मैं अपने धर्म के लिए सच्ची निष्ठा से संघर्ष करता रहूँगा।

(जी.प. खं. २, पृ. २८-२९)

## सातवाँ पत्र-

मैक्समूलर की भारतीयों को ईसाईयत में धर्मान्तरित करने की कितनी तीव्र उत्कंठा थी, इसका अनुमान, २३ नवम्बर १८९८ को, अपनी रोग शय्या से, **सर हेनरी ऑकलैंड** को लिखे पत्र से लगाया जा सकता है:

"I have not much faith in missionaries, medical or otherwise. If we set such men again in India as Ram Mohan Roy, or Keshub Chand Sen, and if we get an archbishop at Calcutta who knows what Christianity is, India will be Christianised in all that is essential in the twinkling of an eye. On this too, we must be hopeful, but not too sanguine."

(LLMM, Vol. 2, p. 398)

"मुझे मिशनरियों, चाहें वे मेडिकल के हों या अन्य, मुझे अधिक विश्वास नहीं है। यदि हम राजाराम मोहन रॉय या केशवचन्द्र सेन जैसे लोग दुबारा भारत भेज सकें और कलकत्ता के लिए एक भरोसा आर्कबिशप मिल सके, जो यह जानता हो कि ईसाईयत क्या है, तो सारा भारत पलक मारते ही ईसाईयत के उस सब जो कि आवश्यक है, में धर्मान्तरित हो जाएगा। इस पर भी हमें, आशावान रहना चाहिए, लेकिन बहुत अधिक आशावादी नहीं।"

(जी. पं. खं २, पृ. ३९८)

उपरोक्त पत्रों के बाद भी क्या किसी को मैक्समूलर के एक कट्टर ईसाई धर्म प्रचारक होने में संदेह रह जाता है जो भारत में हिन्दू धर्म को पूरी तरह समाप्त कर यहाँ ईसाईयत स्थापित करना चाहता था।

## सेक्रेड बुक्स ऑफ दी ईस्ट-सीरीज़

### (पूर्व की पवित्र पुस्तकों की ग्रंथमाला)

मैक्समूलर ने सम्पूर्ण ऋग्वेद के छः खण्डों में अंग्रेजी भाष्य प्रकाशित (१८४९-७४) करने और १८७६ में ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय से भाषा विज्ञान के प्रोफेसर पद से रिटायर हो जाने के बाद, ईस्ट इंडिया कम्पनी और ब्रिटिश शासकों के सहयोग से केवल भारत ही नहीं बल्कि विश्वभर में ईसाईयत को फैलाने के उद्देश्य से एक बहुत महत्वाकांक्षी और दूरगामी प्रभावशाली योजना बनाई। इसका मूल उद्देश्य सभी विश्वधर्मों में ईसाईयत को सर्वश्रेष्ठ सिद्ध करना था। फिर भी इसे तुलनात्मक धर्मशास्त्र अध्ययन नहीं कहा जा सकता। क्योंकि कहीं भी सीधे-सीधे तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत नहीं किया गया है। परन्तु इतना अवश्य है कि ये सब गैर-ईसाई धर्म ग्रंथ हैं। इन मुख्य धर्मग्रंथों की सीरीज की ईसाईयत-समर्थक व्याख्या और इनका सम्पादन करने तथा इनके लिए मन चाहे विद्वान ढूँढने का काम मैक्समूलर को सौंपा गया।

लगभग बीस विद्वानों, जिनमें से अनेक जर्मनी के थे, ने लगभग तीस वर्षों तक (१८७९-१९१०) अथक परिश्रम करके विश्व के सात धर्मों के प्रमुख धर्मग्रंथों के अंग्रेजी अनुवाद को पचास खंडों में तैयार किया (तालिका -२)। इनमें से जर्मनी के कुछ विद्वानों ने मैक्समूलर को ऋग्वेद भाष्य में भी सहयोग दिया था।

### तालिका २. मैक्समूलर द्वारा सम्पादित सेक्रेड बुक्स ऑफ दी ईस्ट

(पचास खंडों में; प्रकाशन वर्ष कोष्ठ में हैं।)

खंड संख्या एवं प्रकाशन वर्ष	पुस्तक एवं लेखक का नाम
१५ (१८८४, १८९०)	उपनिषद् (२ खंड) - मैक्समूलर
१४ (१८७९, १८८२)	सेक्रेड लॉज़ ऑफ दी आर्यन्स (२ खंड) - जॉर्जबुहलर
१६, २७, २८, ३९, ४० (१८७९, १८८२, १८८५, १८८६, १८९१, १८९१)	सेक्रेड बुक्स ऑफ चाइना (६ खंड) - जैम्स लैंगे
२३, ३१ (१८८२, १८८७, १८८७)	जिन्देवस्ता (३ खंड) - जेम्स डरमैस्टर एण्ड एल. एच. मिल्स
१८, २४, ३७, ४७ (१८८०, १८८२, १८८५, १८९२, १८९७)	पहलवी टैक्सट्स (५ खंड) - ई. डब्लू वेस्ट
९ (१८८०)	कुरान (२ खंड) ई. एच. पालमर
७ (१८८०)	इन्स्टीट्यूट्स ऑफ विष्णु- ज्युलियस जौली
८ (१८८२)	भगवद् गीता-सहित सनकु जातीय एण्ड दी अनुगीता- काशीनाथ

	त्रियम्बक तेलंग
१० (१८८१)	धम्मपद एण्ड सुत्तनिपत्त- एफ. मैक्समूलर' एण्ड वी. फौसबील
११ (१८८१)	बुद्ध सुत्तास- टी. डब्ल्यू-राइस डेविड्स
१२, २६, ४१, ४३, ४४ (१८८२, १८८५, १८९४, १८९५, १९००)	शतपथ ब्राह्मण (५ खंड)- ज्यूलियस ऐगलिंग'
१३, १७, २० (१८८२, १८८५, १८८५)	विनय टैक्सट्स (३ खंड)-टी.डब्ल्यू-राइस डेविड्स एण्ड हरमन औल्डिनबर्ग'
१९ (१८८३)	फो-शो हिंग-सान-किंग-सम्यून बील
२१ (१८८४)	सद्धर्म पुंडरिका या लोटस ऑफ दी टू लॉज- एच.कर्म
२२, ४५ (१८८४, १८९५)	जैन सूत्राज (दो खंड)- हरमन जैकोबी
२५ (१८८६)	दी लॉज ऑफ मनु (मनु स्मृति)- जार्ज बुहलर'
२९, ३० (१८८६, १८९२)	गृह्य सूत्राज (२ खंड) हरमनऔल्डिनबर्ग' एण्ड एफ. मैक्समूलर'
३२, ४६ (१८९१, १८९७)	वैदिक हिम्स (२ खंड) एफ. मैक्समूलर' एण्ड हरमन औल्डिनबर्ग'
३३ (१८८९)	माइनर लॉ बुक्स- ज्यूलियस जौली'
३४, ३८ (१९०४)	वेदान्त सूत्राज विद शंकराचार्याज कर्मन्दी (२ खंड) जी. थिबीट'
३५, ३६ (१८९०, १८९४)	क्वेशन्स ऑफ किंग मिलिन्द (२ खंड) टी. डब्ल्यू राइज डेविड्स
४२ (१८९७)	हिम्स ऑफ दी अथर्ववेद- एम. ब्लूमफील्ड
४८ (१९०४)	वेदान्त सूत्राज विद रामानुजाज श्री भाष्य- जी. थिबीट'
४९ (१८९४)	बुद्धिस्ट महायान टैक्सट्स- ई.बी. कॉवेल, एफ. मैक्समूलर' एण्ड जे. टाकाकुसु
५० (१९१०)	इन्डैक्स- एम. विन्टरनिट्ज'

(प्रकाशक- मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली। ये सभी लेखक जर्मन थे।)

इन धर्मशास्त्रों में हिन्दूधर्म, बौद्धमत, जैनमत, इस्लाम, पारसी मत (जोराट्रियनिज्म) पहलवी, टाओवाद व अन्य कई मतों के मुख्य ग्रंथ सम्मिलित हैं। इन पचास खंडों में से सबसे अधिक २१ ग्रंथ, हिन्दूधर्म के हैं। जिनमें वेद, उपनिषद, गीता, मनु स्मृति, विष्णु पुराण, शतपथ ब्राह्मण, गृह्य सूत्र, वेदान्त एवं अन्य स्मृतियां आदि हैं। इसके बाद बौद्धमत पर दस, जैन मत पर दो, चीनी मत पर छः खंड हैं। अन्तिम खंड में इन सब ग्रंथों की विषय सूची है। जो कि मैक्समूलर ने निधन के बाद छपी थी।

ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय ने पहले ये सभी खंड ईस्ट इंडिया कम्पनी की आर्थिक सहायता से प्रकाशित किए। जिन्हें भारत में १९६४ से लगातार **यूनेस्को और भारत सरकार की सहायता से, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली** द्वारा छापा जा रहा है। यहाँ ध्यान देने

योग्य बात यह है कि मैक्समूलर ने स्वयं अपनी समस्त शक्ति और ध्यान हिन्दू धर्म के वेद, उपनिषद, दर्शन शास्त्र, गृह्यसूत्र व संस्कृत साहित्य के इतिहास में लगाया। एक और समझने की बात यह है कि ये वेद सम्बन्धी खंड (३२ व ४६) १८९१ और १८९७ में प्रकाशित हुए। जिनमें कुछ मुख्य चुने वैदिक देवताओं सम्बन्धी मंत्र हैं। परन्तु उसने यहाँ इनमें शुद्ध ऐकेश्वरवाद के अनुसार व्याख्या नहीं की, जिससे उसका हिन्दू धर्म के प्रति पक्षपात एवं हेय भाव झलकता है।



elibrary.thearyasamaj.org

## ११. मैक्समूलर का असली चेहरा

विःसंदेह मैक्समूलर कलम का धनी, पत्र लिखने की कला में सिद्धहस्त एवं मित्र बनाने की क्रिया में पारंगत था। जिसके सहारे विदेशी होते हुए भी ब्रिटेन के प्रभावशाली व्यक्तियों व राजनीतिज्ञों में उसकी गहरी पैठ थी। इसीलिए उसके एक नहीं, अनेक चेहरे थे। एक तरफ वह ब्रिटिशों के राजनैतिक और ईसाईयत के हितों को प्रमुखता देता है, तो दूसरी ओर भारतीय को वेदों, वैदिक भाषा, धर्म और दर्शन की विश्व का प्राचीनत साहित्य कहकर उनका महत्व बढ़ाता है, आदिम विश्व संस्कृति के विकास व इतिहास के अध्ययन के लिए वेदों को अपरिहार्य बताता है। इससे कुछ अधकचरे ज्ञान वाले भारतीय गद्गद हो जाते हैं। परन्तु साथ ही वह वेदों को बचपना व उनमें कहीं-कहीं गंभीर चिन्तन के चिन्ह पाता है। यदि वह हिन्दुओं का सच्चा हितैषी होता तो ऋग्वेद के **स्वराज्य सूत्र** (१:८०:१-१६) पर बल देकर भारतीयों को स्वराज्य पाने की प्रेरणा देता। मगर उसने वैसा नहीं किया। बल्कि भारतीयों को शब्द जाल में बहका कर उनकी सहानुभूति लेता रहा। एक तीसरा चेहरा ऐसा है जिसमें वह पत्रों द्वारा भारतीय धार्मिक नेताओं को सुधारवाद के नाम पर जीवन के आखिरी समय (मार्च १९००) तक उनको ईसाईयत में धर्मान्तरित करने का प्रयास करता रहा।

मैक्समूलर की विद्वता की सच्चाई को **एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका (खंड ग्टप्प, पृ. ९२७-२८, १९११, संस्करण)** ने इस प्रकार उजागर किया है-

"Though undoubtely a great scholar, Max Mullar did not so much represent scholarship pure and simple as her hybrid types-the scholar-author and scholar-courtier. In the former capacity though manifestingly little of the originality of genius, he rendered vast service by popularizing high truths among high minds. In his public and social character, he represented Oriental studies with a brilliancy, and conferred upon them a distinction, which they had not peviously enjoyed in Great Britain. There

were drawbacks in both respects: the author was too prone to build upon insecure foundations, and the man of the world incurred censure for failings which may perhaps be best indicated by the remark that he seemed to much of a diplomatist." (Vol. XVII p. 927-28)

अर्थात् "हालांकि निःसंदेह वह एक महान विद्वान था, मगर मैक्समूलर उस विद्वता के सरल और शुद्ध रूप का उतना प्रतिनिधित्व नहीं करता है, जितना कि उस वर्णसंकर वर्ग यानी विद्वान-लेखक और विद्वान-राजदरबारी का मिश्रण"। पहली श्रेणी में हालांकि एक मेधावी की मौलिकता तक है तथा उसने उच्च सत्यों को उच्च वर्ग में लोकप्रिय बनाने में महान प्रयास किया। वह सार्वजनिक और सामाजिक जीवन में, प्राच्य विद्याओं को तेजस्विता के साथ व्यक्त करता है और उनको श्रेष्ठता देता है, जो कि ग्रेट ब्रिटेन के लोगों ने पहले नहीं देखी थी। मगर इन दोनों प्रकार के चरित्रों में कुछ त्रुटियां हैं। लेखक एक असुरक्षित नींव पर विशाल भवन बनाना चाहता है और सांसारिक मनुष्य की भूलों से डरता प्रतीत होता है। जिसके परिणाम स्वरूप वह एक राजनीतिक जैसा बहुत अधिक हो जाता है।"

इनके अलावा उसका एक चौथा चेहरा भी है। उसने तत्कालीन प्रभावशाली ब्रिटिशों जैसे कार्यालय, सैलर, फ्राड, सर ए. ग्रांट और अन्यो के साथ पत्राचार किया। मगर वे सब पत्र जला दिए गए। श्रीमती जोर्जिना मानती हैं कि "यह दुःख की बात है कि काफी मूल्यवान पत्र व्यवहार नष्ट कर दिया गया है।" (जी. प. प्रीफेस)। इससे सुस्पष्ट है, ये पत्राचार जोर्जिना ने नहीं बल्कि स्वयं मैक्समूलर ने मरने से पहले नष्ट किए होंगे ताकि भावी इतिहास को उसकी असलियत का पता न चल सके। सम्भव है कि उन पत्रों में उसकी कार्य विधि व निष्कर्षों की कड़ी आलोचना की गई हो। सच्चाई तो यही है कि मैक्समूलर ने धन और अपने नाम के प्रचार के बदले में अपनी कलम और आत्मा को ई.आई. सी. और ब्रिटिशों को गिरवी रखकर भारी कीमत चुकाई। उसने पाया कम, खोया ज्यादा। भारतीयों की आलोचना के बाद जब मैक्समूलर की कलई खुली तो स्वयं अपने देश जर्मनी में भी बड़ा अपमान झेलना पड़ा। उसने स्वयं देखा:

"So angry was the German public that the Leipzig branch of the Pan-Germanic League (the All-Deutscher Verein) drew up a solemn protest against Max Muller's apologia for England. The protest closed with the words, 'you have no longer the right to call yourself a German; and one Newspaper expressed its wish to see 'Max Muller hanged on the same gallows with Chamberlain and Rhodes; and the Aasvogel (vultures) picking his wicked ones."

(LLMM, Vol, II, p. 408)

अर्थात् "जर्मनी की पब्लिक मैक्समूलर के ब्रिटिशहितों के लिए समर्पण से इतनी नाराज थी कि 'पैन-जर्मन लीग' की लीपिजिग शाखा ने तीव्र विरोध प्रदर्शित किया। यह विरोध इस नारे के साथ समाप्त हुआ कि **"तुमको जर्मन कहलाने का और अधिक अधिकार नहीं रह गया है"** और एक अखबार ने तो अपनी यह इच्छा प्रगट की कि **'मैक्समूलर के चैम्बरलेन और रोडेस के समान फाँसी दे दी जाए।**

(जी. प. खं. २, पृ. ४०८)

मैक्समूलर के व्यक्तित्व के बारे में श्री भारती ने लिखा है:

"मैक्समूलर एक अनेकार्थवादी वक्ता था, उसने अपने श्रोताओं के सामने ऐसी भाषा में बोलता था कि उसका अपनी मानसिकता, व सुविधानुसार मन चाहे कुछ भी अर्थ लगा सकते थे। मैक्समूलर मिशनरियों के सामने बौद्धिक कलाबाजी में प्रसन्नता से भाग लेता था और श्रोताओं के अनुरूप बोलता था। वह जानता था कि अधिकांश श्रोताओं में आवश्यक बौद्धिक क्षमता नहीं है ताकि वे सत्यार्थ का पता लगा सकें। संक्षेप में वह गोलमाल भाषा में बोलता था" (भारती, पृ. ६७)

भारती जी आगे लिखते हैं: "ई.आई.सी. और लंदन का क्रिश्चियन मिशन इस जर्मन विद्वान के सही व्यक्तित्व को गुप्त ही रखना चाहते थे। इनमें से कोई भी नहीं चाहता था कि दुनिया, विशेषकर हिन्दू, यह जानें कि वह एक सैक्यूलर मिशनरी की तरह, ईसाई मिशनरियों के साथ मिलकर भारत के हिन्दुओं को ईसाईयत में धर्मान्तरित करने के लिए कार्य कर रहा है। जैसे कोई हत्यारा, हत्या करने की योजना बनाने में सदैव पूर्ण कुशल व सफल ही नहीं हो पाता है, वैसे ही वे भी इस भेद को बहुत दिनों तक छिपाए न रख सके और मैक्समूलर की मृत्यु के बाद श्रीमती जोर्जिना द्वारा सम्पादित उसकी जीवनी के प्रकाशन के बाद वह पूरी तरह नंगा हो गया और अब दुनिया जान गई है कि वह न वेदों का विद्वान था और न भारत का शुभचिन्तक। बल्कि एक बहुरूपिया ईसाई मिशनरी था।"

मैक्समूलर ने स्वयं स्वीकारा है कि उसने ऋग्वेद के माध्यम से ब्रिटिश हितों के लिए काम किया है। १३ मई १८७५ को **डीन स्टेनली** को लिखे पत्र में उसने कहा कि- "इंग्लैंड की माहारानी यह जाने की, जिस काम के लिए मैं १८४६ में इंग्लैंड आया था, वह काम मैंने पूरा कर दिया है। (क्योंकि १८७४ तक ऋग्वेद के सभी खंड छप चुके थे) इंग्लैंड वापिस आने पर मुझे एक पत्र मिला, जिसमें लार्ड सैलिसबरी ने मेरी ऋग्वेद सम्बन्धी सेवाओं के सम्मान में मेरे काम के लिए अनुदान राशि बढ़ाने का प्रस्ताव किया है।"

(जी. प., खं. १, पृ. ५१६)



"...I should like the Queen to know that I have now fulfilled the task which brought me to England in 1846 ! On my return to England I found a letter the Lord Salibury had proposed that a further grant should be paid to me in recognition of my services in editing the Rig-veda."

(LLMM vol. 1 : p. 516)

उपरोक्त पत्र में मैक्समूलर द्वारा स्वयं स्वीकृती के बाद भी किसी को किसी प्रकार का सन्देह बाकी रह जाएगा कि उसने जान बूझकर हिन्दू धर्म की जड़े उखाड़ने के लिए, ऋग्वेद के भाष्य का विकृतीकरण नहीं किया है?

इसी प्रकार १६ दिसम्बर १८८२ को ई. डब्ल्यू. कॉलवेल को लिखे पत्र में उसने कहा:

"यदि मेरे भाषणों को सुनकर और दृढ़ प्रतिज्ञा होकर देखें तो पाएंगे कि ब्रिटिश लोग जीते हुए देशों पर बौद्धिक विजय प्राप्त करने के लिए किसी और को मौका नहीं देंगे तथा वास्तव में मुझे इसमें अति प्रसन्नता होगी और मैं अनुभव करता हूँ कि मैंने उस कृतज्ञता के भारी कर्ज का बदला चुका दिया है, भले ही कम मात्रा में। जो मुझ पर मेरे द्वारा अपना देश इंग्लैंड (क्योंकि वह जर्मन था) का, और उसके कुछ राजनीतिज्ञों (जैसे ग्लेडस्टोन, बुनसन, पामरसन, ड्यूक ऑफ ऑरगायल आदि) जिन्होंने मुझे यहाँ कुछ करने, यानी ऋग्वेद की पांडुलिपि का प्रकाशन, सम्पादन और उसका अंग्रेजी भाष्य, और अब 'सैक्रेड बुक्स ऑफ दी ईस्ट' के अनुवादों के सम्पादन करने का, सपना पूरा करने का अवसर दिया।

(इंडिया, वही पृ. XXV-XXVI)

"If some of the young candidates for the Indian Civil Service who listened to my Lectures, quietly made up their minds that such a reproach shall be wiped out, if a few of them at least determined to follow in the footsteps of Sir William Jones, and to show to the world that Englishman who have been able to achieve my pruck, by perseverance, and by real political genius the material conquest of India, do not mean to leave the laurels of its intellectual conquest entirely to other countries, then I shall indeed rejoice, and feel that I have paid back, in however small a degree, the large debt of gratitude which I owe to my adopted country and to some of its greatest statesmen, who have given me the opportunity which I could find nowhere else of realising the dreams of my life,—the publication of the text and commentary of the Rigveda, the most ancient book of Sanskrit, aye of Aryan literature and now the edition of the translation of the Sacred Books of the East."

### (India, What Can It Teach Us ? by Max Muller, fp. XXV-XXVI)

उपरोक्त समर्पण पत्र में मैक्समूलर १८८२ में 'ऋग्वेद' और 'सेक्रेड बुक्स ऑफ दी ईस्ट' (अन्य धर्मों के ग्रंथों) के सम्पादन आदि के लिए अंग्रेजी के प्रति कृतज्ञता बार-बार प्रगट करता है। "अंग्रेजों ने मैक्समूलर की व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति की; इसके बदले में मैक्समूलर ने अपनी आत्मा का ही बलिदान दिया।"

## आत्म निरीक्षण का अवसर

हालांकि मैक्समूलर के निधन को आज १०९ वर्ष हो गए हैं और अंग्रेजों का राज्य भी भारत में समाप्त हो गया है। इस काल खंड में मैक्समूलर के सभी सिद्धान्तों की धज्जियाँ उड़ा दी गई हैं। परन्तु फिर भी केवल थोड़े से ही भारतीय मैक्समूलर के असली चेहरे को भली-भांति जानते होंगे। अधिकांश बुद्धिजीवी, जो उसके कार्यों से सुपरिचित होने का दावा करते हैं। वे अक्सर कही-सुनी अप्रामाणिक जानकारी पर दम्भ करते हैं, जो कि सामान्यतया विरूपित होती है। परन्तु हिन्दू विरोधी सेक्यूलरवादी आज भी योजनाबद्ध ढंग से उसे ही प्रचारित कर रहे हैं। परिणामस्वरूप वे जाने-अनजाने मित्र और शत्रु में भेद करने में असफल रहे हैं।

सच्चाई तो यह कि मैक्समूलर एक बहुरूपिये की तरह भारत और भारतीयों का सच्चा शुभचिन्तक बने रहने का ढोंग करता रहा। जबकि वास्तव में वह अपने नाम, दाम और ईसाईयत की खातिर जीवन भर वेदों और हिन्दू धर्मशास्त्रों को विकृत कर हिन्दुओं को ईसाईयत में धर्मान्तरित करने का प्रयास करता रहा। जिसे कि ब्रिटिश राज्य का पूर्ण समर्थन मिला। खेद का विषय है कि उसके साहित्य को आज आजादी के बाद भी पहले की ही तरह समर्थन मिल रहा है, जो कि सर्वथा त्याज्य एवं निन्दनीय है।

## मैक्समूलर बेनकाब

मैक्समूलर को ब्रिटिश योजनाओं और नीतियों के अनुसार नियुक्त किया गया और उसे यह काम सौंपा गया। जिसे उसने पूरा करने के लिए अपने को सच्चाई के साथ वचनबद्ध अनुभव किया। वह ईस्ट इंडिया कम्पनी के निदेशकों के बोर्ड को दिए गए, इन वचनों के प्रति सच्चा सिद्ध करना चाहता था कि, वह वेदों के विकृतीकरण और भारत से हिन्दू धर्म की जड़ से उखाड़ने और उसकी जगह क्राइस्ट के धर्म- ईसाईयत को जमाने को पूरा प्रयास करेगा। उसने जीवन की अन्तिम घड़ी तक वेदों के निम्नीकरण, अवनतिकरण एवं विकृतीकरण, तथा उसकी जगह जीजस क्राइस्ट और ईसाईयत को जमाने, उसकी प्रशंसा करने और इन्हें प्रतिष्ठित करने

के लिए सच्चाई के साथ जी-जान से प्रयास किया। यह एक दूसरी बात रही कि वह अपनी अभिलाषा पूरी करने में स्वयं भी पूरी तरह से बेनकाब हो गया।



elibrary.thearyasamaj.org

## १२. संदर्भ ग्रंथ

- Agnes Staehe- Weiske: German Indologists, Max Muller Bhavan, Delhi, 1990.
- Bhagvad Datt : (1) Western Indologists : A Study in Motives, 1954, (2) वेदों के भाष्यकार
- Bharti, Brahm Datt : Max Mullar-A life Long Masquerade (MMLM; भारती ) Era Books Delhi, 1992.
- Bose, A.C. : The Call of the Vedas.
- Chaudhuri, Nirad : Scholar Extraordinary-The Life of Friedrich Max Mullar, Orient Paperbakcs, Delhi, 1974.
- Clifford Christ'ianity in a Changing India.
- Gardner. L. Blood line of the Holy Grill.
- Max Mullar F : India What Can It Teach Us.,? Pengiun Books, Delhi, 2000.
- Max Muller Georgina: The Life and Letters of the Rt Friedrich Max Muller, K.M. London, 1902 (2 Vols; LLMM; जी. प..)
- Mill James: History of British India.
- Mishra, Madhu Sudan: Vedic Scholars from the West, Eastern Links, Delhi, 2003.
- Noble Robert: L' Ezurvedam, 1578.
- Priolkar, A.K. : The Goa Inquistion, University Press Bombay, 1961.
- Ram Mohan Roy: Life and Letters of Ram Mohan Roy,

- Sayee A.H. : Introduction to the Science of Language : by F. Maxmuller, London, 1883.
- Shri Arbindo : (1) Secret of Veda (वेद रहस्य १९७१ २ खंड); (2) Dayanand and Veda, Shri Arvindo Ashram, 1916 Pondicherri.
- Stuart Piggot : Prehistoric India.
- Traveyan G.O. : The Life and Letters of Lord. T.B. Macaullay, Longmans, Green ECO. 1890.
- Varma, Thakur Kahan Chand, Christ -A-Myth, Lahore, 1933
- Ward, W. : Mythology of the Hindus.
- Williams, M. M. : A Sanskrit-English Dictionary, Chaukhamba; Varanasi, 1963; The Study of Sanskrit in Relation to Missionary Work in India.
- Wilson H.H. The Religion and Philosophical System of the Hindus.
- दयानन्द सरस्वती: १) सत्यार्थ प्रकाश, २) ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका।
- द्विवेदी, कपिलदेव: वैदिक दर्शन, विश्व भारती अनुसंधान परिषद, ज्ञानपुर; २००४.
- धर्मदेव : वेदों का यथार्थ स्वरूप, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार।
- पालीवाल के. वी.; वेदपश्चायिका; क्या बाइबिल ईश्वरीय ग्रंथ है? हिन्दू राइटर्स फोरम, दिल्ली।
- विमला; सायण और दयानन्द के वेद भाष्य का तुलनात्मक अध्ययन।
- वेदालंकार, रामनाथ: वेदभाष्यकारों की वेदार्थ-प्रक्रियाएँ, पंजाब विश्वविद्यालय, होशियारपुर, १९८०।
- शिवशंकर: वैदिक इतिहासार्थ निर्णय, प्रेम पुस्तक भंडार, बरेली, १९८५

